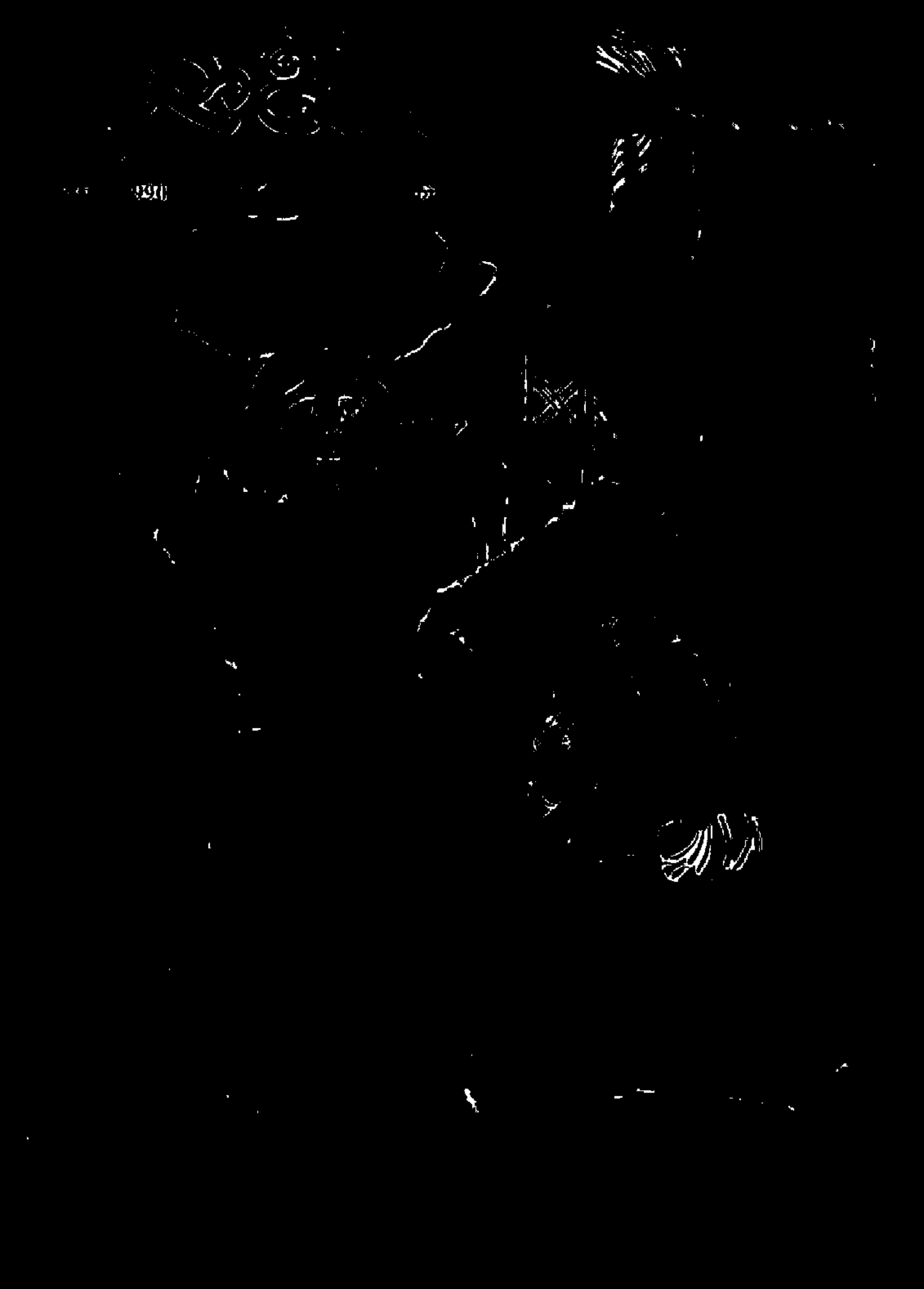

वर्ष—36, अंक 1, कार्तिक-अग्रहायण शक-1912

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास विभाग का प्रमुख मासिक

सम्पादक : राम बोध मिश्र
सहायक सम्पादक : गुरचरण लाल सूखरा
उप सम्पादक : राकेश शर्मा

विज्ञापन प्रबंधक : बैजनाथ राजभर
व्यापार व्यवस्थापक : जसवंत सिंह
सहायक व्यापार व्यवस्थापक : शकुन्तला
उत्पादन अधिकारी : के. आर. कृष्णन्

आवरण पृष्ठों की
साज सज्जा : अलका नय्यर
चित्र : सिवेन्द्र सिंह

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

एक प्रति : 3.00 रु.
वार्षिक चंदा : 30 रु.

विषय सूची

भारत में बाल श्रमिकों की स्थिति — 2
(डा.) कु. पुष्पा अग्रवाल
व्यथा कामकाजी बालिकाओं की — 6
देवकी जैन
बाल श्रमिक : कहां है इनकी समस्याओं का अन्त? — 10
मुनेश्वरी तिवारी
बाल श्रम—एक गंभीर समस्या — 13
भारत डोगरा
बाल श्रम : समस्या और समाधान — 16
नीलम गुप्ता
शोषण और अन्याय की चक्की में पिसते कामकाजी बच्चे — 20
सुभाष चन्द्र 'सत्य'
बुधुआ से बुधराम — 22
कन्हैया लाल 'मत्त'
गांधीजी का आर्थिक दर्शन — 25
डा. ब्रजेशपति त्रिपाठी
कब तक होती रहेगी बाल-गोपालों की उपेक्षा? — 27
विश्वनाथ गुप्त
भारत में दक्षेस बालिका वर्ष — 30
शोभना जैन
ग्रामीण विकास में भूमि और वन संसाधनों का योगदान — 34
डा. जगबीर कौशिक
शिक्षा दान करो... — 37
जानकी प्रसाद विवश
भूमि सुधार के बिना कृषि विकास असंभव — 38
जगदीश प्रसाद
आठवीं योजना में खादी-ग्रामोद्योगों की भूमिका — 40
बी. आर. चौहान एवं एम. पंडित
आदर्श गांव—बुखारा — 43
सलमान ज़मीर
पुस्तक समीक्षा — 44
ऋता विकल्प

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हो।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), कृषि मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।
दूरभाष : 384888

भारत में बाल श्रमिकों की स्थिति

(डा.) कु. पुष्पा अग्रवाल

पहले विकास के योजना-निर्माता कुल राष्ट्रीय उत्पाद, बचत, निवेश, व्यापार और उत्पादन लक्ष्यों जैसे आर्थिक सूचकों से घिरे रहे हैं किन्तु आज यह अनुभव किया जा रहा है कि मानव विकास को सर्वोपरि महत्व दिया जाना अपरिहार्य है। केवल आर्थिक उन्नति से ही यह सुनिश्चित नहीं हो जाता कि राष्ट्र के सभी मानवों की आवश्यकताएं पूरी हो जाएंगी। वास्तव में किसी भी राष्ट्र के विकास का सबसे महत्वपूर्ण परिचायक है वहां के नागरिक की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति। यह मानवीय लक्ष्य वांछनीय ही नहीं है वरन् तकनीकी दृष्टि से सम्भाव्य और आर्थिक दृष्टि से वहन किए जाने योग्य है। उनकी पूर्ति के लिए मुख्य आवश्यकता राजनैतिक इच्छा शक्ति, दृष्टि और नेतृत्व की है। ये लक्ष्य मानवीय क्षमताओं के विकास के माध्यम से गरीबी के सर्वाधिक विकृत रूपों पर विजय पाने के लिए है। बाल श्रमिक इसमें सबसे कमजोर, शोषित और सुविधाहीन वर्ग है।

भारत में अन्य अधिकांश समस्याओं के अनुरूप बाल श्रमिक की समस्या भी देश की आर्थिक-सामाजिक स्थिति से जुड़ी है। सामाजिक स्थितियां और आर्थिक आवश्यकताएं ही बच्चों को मजदूरी के लिए बाध्य करती हैं। अधिकांश बाल श्रमिक असंगठित क्षेत्र में कम मजदूरी और कौशल के निचले स्तर पर काम करते हैं।

बच्चे राष्ट्र की जीवन्त सम्पदा है। उनकी अवहेलना, उनका शोषण, राष्ट्र के विकास में सबसे बड़ा अवरोध है। राष्ट्र के उन्नत और विकसित स्वरूप के लिए वहां के बच्चों के स्वास्थ विकास और कल्याण पर ध्यान देने की आवश्यकता है। बच्चों को चाहे कैसी भी आर्थिक विवशताओं से मजदूरी करनी पड़े, उनके स्वास्थ्य, उनके विकास और कल्याण को दृष्टिगत रखना अपरिहार्य है। पहले स्थिति यह थी कि बाल श्रमिकों में से अधिकांश स्कूल के दर्शन भी नहीं कर पाते थे या फिर पारिवारिक आर्थिक परिस्थितियों से बाध्य होकर किसी न किसी स्तर पर बीच में पढ़ाई छोड़ देनी पड़ती थी, वास्तव में बाल श्रमिक आजीविका अर्जन के स्रोत, शिक्षा, प्रशिक्षण एवं कार्यगत कौशल प्राप्त करने से वंचित रह जाते थे। इस प्रकार उनका मानसिक और बौद्धिक विकास भी रुक जाता था। न उनका आर्थिक विकास हो पाता था और न ही व्यक्तित्व में निखार आ पाता था। वे जिन परिस्थितियों में जन्म लेते थे, उन्हीं में एड़ियां रगड़ते दम तोड़ देते थे।

किन्तु आज परिस्थितियों में कुछ बदलाव आया है। बाल श्रमिकों से सम्बन्धित श्रम कानूनों के बेहतर प्रवर्तन के लिए सरकार ने राज्यों में प्रवर्तन तंत्र को सुदृढ़ करने की योजना बनाई, किन्तु सामाजिक चेतना के अभाव में बीड़ी लपेटने, पैकिंग, संसाधित आहारों के लिए फल-सब्जी छीलने-काटने, अभ्रक की सफाई-कटाई, कालीन बुनने के कारखानों आदि में इन बाल श्रमिकों को सूरज की रोशनी देखनी भी नसीब नहीं होती थी। मुंह अंधेरे उन्हें उठा दिया जाता था जो सुस्ती दिखाता या देर करता उस पर अमानुषिक अत्याचार किए जाते थे। मारपीट होती, खाना-पीना बन्द कर दिया जाता, पर काम तो करना ही होता था। आधे पेट रहकर भी रात के ग्यारह-बारह बजे तक ये अपने काम में उलझे रहते थे। आज भी इन बाल श्रमिकों में से अधिकांश को इस औद्योगिक युग की होड़, सुख सुविधाओं की महत्वाकांक्षा और जीवन के अभावों ने उन्हें इतना तोड़ दिया है कि उनमें से अधिकांश नशीली दवाओं के शिकार हो गए हैं। कभी-कभी ये बच्चे तस्करों के पासे भी बन जाते हैं। वर्ष 1971 की जनगणना के अनुसार देश में 10.74 मिलियन बाल श्रमिक थे,जो कुल बाल जनसंख्या का 4.66 प्रतिशत और श्रमिक बल का 5.95 प्रतिशत था। इनमें से 7.9 मिलियन लड़के और 2.8 मिलियन लड़कियां थीं। वर्ष 1981 की जनगणना (5 प्रतिशत नमूना आंकड़े के आधार पर) के अनुसार 14 वर्ष तक के बाल श्रमिकों की संख्या 13.6 मिलियन थी। (इसमें आसाम राज्य के बाल श्रमिक सम्मिलित नहीं हैं।) सामान्यतः यह माना जाता है कि राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण द्वारा श्रम शक्ति के सम्बन्ध में प्रस्तुत किए गए आंकडे अधिक सही हैं। इसके 32वें राउन्ड के अनुसार (वर्ष 1977-78) 5 से 14 वर्ष तक की आयु के बाल श्रमिकों की संख्या 16.663 मिलियन थी। 38वें राउन्ड के अनुसार श्रम में लगी जनसंख्या और जनगणना के आंकड़ों की दर पर श्रम मंत्रालय की विशेषज्ञ समिति के अनुसार बाल श्रमिकों की संख्या निम्न अनुसार थी :

	1986 अनुमानित	1977-78 एन. एस. एस. के 32वें राउन्ड के अनुसार (मिलियन में)
5 से 14 वर्ष के बच्चों की कुल संख्या	183.20	171.93
5 से 14 वर्ष बाल श्रमिकों की संख्या	16.668	16.663
कुल बाल जनसंख्या में से बाल श्रमिक का प्रतिशत	9.1 प्रतिशत	9.7 प्रतिशत

उपरोक्त आंकड़ों से यह प्रतीत होता है कि मोटे रूप से 10 वर्ष की अवधि के दौरान बाल श्रमिकों की संख्या 9.7 प्रतिशत से 9.1 प्रतिशत हुई है।

सरकार द्वारा गठित बाल श्रम तकनीकी सलाहकार समिति की सिफारिशों के आधार पर, उपरोक्त अधिनियम की अनुसूची में निम्नलिखित व्यवसायों तथा प्रक्रियाओं को जोड़ा गया है:

व्यवसाय : उन दुकानों में नियोजन जिन्हें पटाखे और आतिशबाजी बेचने के लिए अस्थायी रूप से लाइसेंस दिया गया है।

प्रक्रियाएं : – स्लेट पेंसिलों का विनिर्माण (इनमें पैकिंग शामिल है)

– एगेट से उत्पादों का विनिर्माण।

– सीसा, पारा, मैंगनीज, क्रोमियम, केडमियम, बेन्जीन, पेस्टीसाइड्स तथा एस्बेस्टास जैसी धातुओं और पदार्थ का प्रयोग करनी वाली विनिर्माण प्रक्रियाएं।

वैधानिक स्थिति

भारतीय संविधान की 24वीं धारा के अनुसार '14 वर्ष की आयु से कम के किसी बच्चे को किसी फैक्ट्री अथवा खान में या किसी ऐसे काम पर जो जोखिम भरा हो, नहीं लगाया जा सकता है।'

धारा 39 (सी) के अनुसार श्रमिकों को स्त्री, पुरुषों और कम आयु के बच्चों और नागरिकों को आर्थिक परिस्थितियों के आधार पर भी किसी ऐसे व्यवसाय में लगने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता जो उसके स्वास्थ्य और शक्ति के अनुकूल न हो।

धारा (एफ) कहती है, बच्चों और युवकों की शोषण, नैतिक और आर्थिक स्थिति से रक्षा की जाएगी।

बाल श्रमिक की समस्याओं को कम करने के दृष्टिकोण से बच्चों को नौकरी पर लगाने के लिए निम्नलिखित कानून लागू किए गए।

बाल श्रमिक अधिनियम 1938

अधिनियम के अनुसार 15 वर्ष से कम आयु का व्यक्ति बच्चा है। अधिनियम बच्चों को काम के लिए बन्धक रखने के अनुबन्ध का निषेध करता है। अधिनियम यह भी कहता है कि बच्चे को श्रमिक रूप से बन्धक रखने से सम्बन्धित कोई भी अनुबन्ध अवैध है एवं ऐसे अनुबन्ध या बच्चे को बन्धक बनाकर नौकरी पर लगाने के लिए दण्ड का विधान करता है।

बाल श्रमिक (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम 1986

यह अधिनियम कुछ रोजगारों में बच्चों को नियुक्त करने का निषेध करता है तथा दूसरे कुछ रोजगारों में बच्चों की कार्य शर्तों को नियमित करता है।

धारा 3

किसी ऐसे व्यवसाय में, जो अनुसूची के भाग 'ए' में परिगणित किया गया हो अथवा किसी ऐसे कारखाने में जो अनुसूची 'बी' में समाविष्ट हो, किसी बच्चे को नौकरी पर नहीं रखा जा सकता है और न ही काम करने की अनुमति दी जा सकती है।

बशर्ते कि उस कारखाने में जहां पर इस धारा में उल्लिखित कोई भी बात लागू न होती हो।

अनुसूची—भाग 'ए'

निम्न से सम्बन्धित कोई भी व्यवसाय :

1. रेलवे द्वारा मुसाफिर गाड़ी, मालगाड़ी आदि परिवहन।
2. राख उठाना, राख के डिब्बे खाली करना अथवा रेलवे परिसर में भवन निर्माण कार्य।
3. रेलवे स्टेशन पर कैटरिंग संस्थान में काम करना या एक प्लेट फार्म से दूसरे प्लेटफार्म पर या चलती गाड़ी में फेरी वाले के रूप में माल बेचना।
4. रेलवे स्टेशन के निर्माण से सम्बन्धित कार्य अथवा ऐसा कोई अन्य कार्य, जहां ऐसा कार्य बन्द परिसर में या रेलवे लाइनों के बीच में किया जाना हो।

5. कोई पत्तन अधिकारी पत्तन की सीमा में।

भाग 'बी' संसाधन

1. बीड़ी बनाना।
2. कालीन बुनना।
3. सीमेंट का निर्माण, जिसमें बोरों की भराई भी समाविष्ट है।
4. कपड़ा छापना, रंगना और बुनना।
5. सिगरेट, विस्फोटकों और आग से सम्बन्धित सामग्री का निर्माण।
6. अभ्रक काटना और पतरे उतारना।
7. लाख निर्माण।
8. साबुन बनाना।
9. चमड़ा रंगना (टैनिंग)।
10. ऊन की सफाई।
11. भवन निर्माण उद्योग।

बाल श्रमिकों को किसी रोजगार में नौकरी देने के सम्बन्ध में उपरोक्त अधिनियमों के अतिरिक्त अनेकों अन्य कानून और अधिनियम बनाए गए हैं तथा अनेकों धाराएं और प्रावधान लागू किए गए हैं। उदाहरणतया नियुक्ति के समय न्यूनतम आयु, कार्य के अधिकतम घण्टे, रात को कार्य निषेध आदि। जिन अधिनियमों में इस प्रकार के प्रावधान समाविष्ट हैं उनमें न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948, फैक्ट्री अधिनियम 1948, बाग श्रम अधिनियम 1951, खान अधिनियम 1952, इन्डियन मर्चेन्ट शिपिंग अधिनियम 1958, मोटर परिवहन श्रमिक अधिनियम 1961, एप्रैन्टिस एक्ट 1961, बीड़ी एवं सिगार श्रमिक अधिनियम 1966 आदि आते हैं।

सम्पूर्ण विश्व के बाल श्रमिकों के हित को दृष्टिगत रखते हुए अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संस्था (आई.एल.ओ.) ने जिन 18 कन्वेनशन्स को अपनाया है, भारत सरकार ने उनमें से निम्नलिखित 6 कन्वेनशन्स को कुछ अनुशोधन सहित भारत के लिए अंगीकार कर लिया है। इन्हें देश में लागू किया जा रहा है।

- न्यूनतम आयु (उद्योग) कन्वेनशन (5) 1919
- न्यूनतम आयु (ट्रीम्मरस एवं स्टॉकर) कन्वेनशन (15) 1921
- न्यूनतम आयु (भूगर्भ में कार्य) कन्वेनशन (123) 1973
- चिकित्सा जांच (सागर) कन्वेनशन (16) 1921
- रात में काम (उद्योग) कन्वेनशन (6) 1919
- रात में काम (उद्योग पुनर्विचरित) कन्वेनशन (90) 1948

इन सभी कन्वेनशनों में से सर्वाधिक महत्वपूर्ण कन्वेनशन वर्ष 1973 में स्वीकृत न्यूनतम आयु (सं. 138) है। जिसके अनुसार विकसित देशों के लिए न्यूनतम आयु 15 वर्ष और विकासशील देशों के लिए 14 वर्ष निर्धारित की गई है किन्तु जोखिमपूर्ण व्यवसायों के लिए न्यूनतम आयु सीमा 18 वर्ष है।

बाल श्रमिक सैल की स्थापना वर्ष 1979 में हुई थी। यह सैल सरकारी और गैर-सरकारी संस्थानों में कार्यरत बाल श्रमिकों के कल्याण में संलग्न है। स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा बाल श्रमिक कल्याण परियोजनाओं को अपनाने पर यह सैल उन्हें वित्तीय सहायता भी प्रदान करता है। ये परियोजनाएं कार्य स्थल पर बाल श्रमिकों के स्वास्थ्य की देख-रेख, उनके पूरक पोषण, अनौपचारिक शिक्षण और व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था करती है।

वर्ष 1985-86, 1986-87, 1987-88 और 1988-89 के दौरान बाल श्रमिकों के कल्याण से जुड़ी निम्न परियोजनाओं एवं सर्वेक्षण कार्यक्रमों के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की गई:

1. मनोविज्ञान तथा शैक्षिक अनुसंधान परिषद कलकत्ता द्वारा बाल श्रमिक को गैर-औपचारिक शिक्षा सुविधा और स्वास्थ्य सेवा और पोषण की व्यवस्था।
2. कर्नाटक बाल कल्याण परिषद, बंगलौर द्वारा चिथड़े ढूंढने वाले बच्चों के लिए जय राजेन्द्र रैग पिकर्स परियोजना चलाई जा रही है।
3. स्वनियोजित महिला संघ, अहमदाबाद द्वारा बाल श्रमिक पुनर्वास परियोजना के अन्तर्गत कार्य किया जा रहा है।
4. अन्तर्राष्ट्रीय समाज कल्याण परिषद बम्बई द्वारा बाल श्रमिकों के लिए कल्याण/विकास केन्द्र परियोजना।
5. मध्य प्रदेश शासकीय कर्मचारी महिला कल्याण समिति, भोपाल द्वारा बाल श्रमिकों के लिए कैम्यूनिटी सेन्टर।
6. भारतीय अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र, नई दिल्ली द्वारा बाल श्रमिकों के लिए कानून पर एक संगोष्ठी आयोजित करने के लिए वित्तीय सहायता।
7. कालीन बुनाई उद्योग मिर्जापुर-मदोई से निकाले गए बाल श्रमिकों के अनौपचारिक शिक्षण, व्यावसायिक प्रशिक्षण, स्वास्थ्य, पोषण आदि के लिए सघन क्षेत्र विकास समिति सेवापुरी, वाराणसी द्वारा केन्द्र की स्थापना।

8. श्रमिक विद्यापीठ, हैदराबाद द्वारा हैदराबाद में ग्रामीण व्यवसायों से निकाले गए बाल श्रमिकों के लिए अनौपचारिक शिक्षा कैम्पों की परियोजना।

9. भारतीय बाल कल्याण परिषद, नई दिल्ली द्वारा फिरोजाबाद में (उत्तर प्रदेश) बाल श्रमिकों के लिए एक केन्द्र की स्थापना।

10. मध्य प्रदेश और तमिलनाडु के बीड़ी उद्योगों में कार्यरत बाल श्रमिकों के लिए भारतीय बाल कल्याण परिषद, नई दिल्ली द्वारा कल्याण केन्द्रों की स्थापना की परियोजना।

11. दिल्ली में सड़कों पर काम कर रहे बाल श्रमिकों के लिए भारतीय बाल कल्याण परिषद, नई दिल्ली द्वारा केन्द्रों को स्थापित करने की परियोजना।

12. रुचिका स्कूल भुवनेश्वर द्वारा गैर-संस्थागत बाल श्रमिकों की देख-रेख, पूरक पोषण आहार, औपचारिक एवं अनौपचारिक प्रशिक्षण की व्यवस्था सम्बन्धी परियोजना।

13. मालारची ट्रस्ट वाही कुलम (तमिलनाडु) द्वारा माचिस उद्योग से निकाले गए बच्चों के लिए परियोजना।

बाल श्रमिक सैल की गतिविधियों के लिए सातवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान 1.50 करोड़ रुपये स्वीकार किए गए थे। वर्ष 1987 में बाल श्रमिक नीति की घोषणा की गई, जिसमें विशिष्ट क्षेत्रों में कार्यरत बाल श्रमिकों के कल्याणार्थ अनेक परियोजनाएं प्रारंभ की गईं। वर्ष 1989-90 में इस सैल की गतिविधियों के लिए 2.35 करोड़ रुपये स्वीकार किए गए हैं। इसमें से 2.05 करोड़ रुपये राष्ट्रीय बाल श्रमिक नीति परियोजना के लिए और 20 लाख रुपये बाल कल्याण परियोजनाओं के अन्तर्गत कार्य करने वाली स्वैच्छिक संस्थाओं के लिए स्वीकार किए गए हैं।

योजनाएं

बाल श्रमिक सैल द्वारा सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90) के दौरान निम्न योजनाएं बनाई गई हैं :

1. बाल श्रमिक सैल को अधिक क्षमताशील बनाना।
2. बाल श्रमिकों के कल्याण के लिए सक्रिय स्वैच्छिक संस्थाओं को वित्तीय सहायता प्रदान करना।

रु. (लाखों में)

1.	1989-90 (15.2.1990 तक)	11.43
2.	1988-89	13.58
3.	1987-88	10.58
4.	1986-87	9.43

3. राष्ट्रीय बाल श्रमिक परियोजना—इस योजना के अन्तर्गत 9 परियोजनाएं स्वीकृत हैं जिनके लिए 15 फरवरी 1990 तक 110.67 लाख रुपये स्वीकृत किए गए हैं।
4. बाल श्रमिकों से सम्बन्धित कानून एवं विधि का अधिक उपयुक्त रूप से लागू करने के लिए क्रियान्वयन तंत्र को अधिक सशक्त करना।

बाल श्रमिक पर समिति

बच्चों को रोजगार पर लगाने से उत्पन्न समस्याओं एवं कारणों को समझ कर उनके समाधान एवं बच्चों की सुरक्षा तथा कल्याण की दृष्टि से भारत सरकार ने 1979 में श्री एम. एस. गुरुपदस्वामी की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया था। इस समिति के गठन का उद्देश्य वर्तमान सम्बद्ध कानूनों को समुचित ढंग से लागू कराना, बच्चों के लिए हलके रोजगारों में गुंजाइश की तलाश, उनके कल्याण, प्रशिक्षण आदि के सम्बन्ध में सुझाव देना था। इस समिति ने दिसम्बर 1979 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, जिसके आधार पर आज अनेक परियोजनाएं चल रही हैं।

बाल श्रमिक, हालांकि अवांछनीय है, फिर भी सामाजिक-आर्थिक बाध्यता के कारण विभिन्न रोजगारों में विद्यमान है। सरकार की नीति फैक्ट्रियां, खानों तथा अन्य जोखिमपूर्ण कार्यों में 16 वर्ष से कम आयु के बच्चों के लगाने पर संविधान के उपबन्धों के अनुसार प्रतिबन्ध लगाना है और अन्य व्यवसायों में काम कर रहे बालकों का काम-काज की दशाओं को नियमित करना है। सरकारी नीतियों एवं कानूनों के होते हुए भी जब तक जनमानस चेतन होकर इसके प्रतिकार के लिए कटिबद्ध नहीं होता तब तक बाल श्रमिक सम्बन्धी समस्याओं का निराकरण सम्भव नहीं है।

72, एस. एफ.एस. फ्लैट्स,
गौतम नगर, नई दिल्ली-16

व्यथा कामकाजी बालिकाओं की

देवकी जैन

कामकाजी बच्चे एक ऐसी संवृति है जो गरीब देशों के साथ जुड़ी हुई है। ऐसा माना जाता है कि यदि परिवार के रहन-सहन को ऊंचा उठाना है तो परिवार के हर सदस्य को कमाना होगा। बूढ़े और जवान, मर्द और औरत सभी घर से बाहर, बेकार की चीजें जैसे कूड़ा करकट अथवा टहनियां और पत्ते चुन रहे होते हैं जो उनकी आय का साधन होते हैं या ये लोग होटलों में मजदूरी, गैराज में मिस्त्री के सहायक का काम करते हैं या बोझा ढोते हैं, बूट पालिस करते हैं, जबकि लड़कियां घरों में नौकरानी का काम करती हैं।

जबकि यह संवृति गरीबी के साथ जुड़ी हुई है, इसका वास्तविक कारण यह है कि समाज में वयस्कों के लिए, साधारण से साधारण स्तर पर परिवार का जीवन-यापन करने के लिए पर्याप्त रोजगार की कमी है। दूसरे शब्दों में सभी व्यस्क पुरुषों ओर महिलाओं के लिए न्यूनतम मजदूरी के आधार पर अथवा एक गरीबी से ऊपर की रेखा, जहां रहन-सहन का एक न्यूनतम स्तर बनता है, के अनुसार आय के साधन हों तो कोई भी माता-पिता, चाहे वे गांवों में रहते हों अथवा शहर की झोपड़-पट्टी में, अपने बच्चों को गंदा काम, जो कभी-कभी खतरनाक भी होता है, करने न भेजते। वे उन्हें स्कूल भेजते।

यह एक ऐसी परिस्थिति है जब हम पूर्ण रोजगार जैसी एक नीति के महत्व के बारे में सोचने लगे हैं और यही हमारी आठवीं पंचवर्षीय योजना की नीति का आधार है। काम का अधिकार कार्यक्रम, जो कि ऐसी नीति का संचलनात्मक भाग है, यदि अमल में आ जाता है तो इससे गलियों, फैक्टरियों और खानों में हो रहे 'बच्चों के शोषण' से वास्तविक मुक्ति मिल सकती है। केवल यही एक वृहत् नीति है जो भारत के श्रमिकों—चाहे वे बंधुआ मजदूर हों या बच्चे अथवा असहाय महिलाएं, को शोषण से मुक्ति दिला सकती है। सामाजिक ढांचा और कानून तो केवल काम चलाऊ उपाय हैं। एक अर्थ में इससे अस्थायी राहत मिलने की तो बात ही क्या वे भारतीय युवाओं के लिए रोजगार के अलावा काम की बेहतर परिस्थितियों और मजदूरी के लिए एक प्रयत्न करने में हमारे सामने बाधक तक बन सकते हैं।

मेरे इस पहलू अर्थात एक वृहत नीति, जो कि बालिकाओं की स्थिति जैसे अहम् मुद्दे को तरजीह देने का कारण यह है कि हम प्रायः महिलाओं की प्रवृति के बारे में वृहत नीतियों पर सार्वजनिक चर्चाओं में अपने राजनीतिक महत्व का इस्तेमाल नहीं करते हैं। मेरी राय में, हमें न केवल 'काम के अधिकार' के कार्यक्रम का समर्थन करना चाहिए बल्कि यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि हम उसी रास्ते पर ही चलें जिसकी हमने कल्पना की है अर्थात यह रास्ता राहत पहुंचाने या थोड़ी-बहुत मदद कर देने तक अथवा बेरोजगारों को अल्पावधि का रोजगार मुहैया करा कर मात्र दिखावा करने तक ही सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि इसका उद्देश्य देश में उपलब्ध साधनों का पूरा इस्तेमाल करके नियमित रोजगार जुटाना होगा। इसके लिए परम्परा से अपनाई जा रही प्रौद्योगिकी में सुधार लाना होगा और साथ ही रोजगार के वर्तमान साधनों की सुरक्षा भी करनी होगी चाहे ये साधन थोड़ा रोजगार और कम मजदूरी देने वाले ही क्यों न हों।

हमें कृषि और इससे जुड़े हुए उद्योगों के अलावा खादी ग्रामोद्योग आयोग, अखिल भारतीय हस्तशिल्प बोर्ड, कयर आदि जैसे काफी पहले विकसित किए गए परन्तु अब निष्क्रिय-से ढांचों को सुधरी प्रौद्योगिकी ओर अच्छे प्रबंध के साथ फिर से नया रूप देना होगा। जिनमें काम करने के साधन और परिस्थितियां बेहतर हों और मजदूरी भी उत्साहवर्धक हो।

कामकाजी लड़कियों की दशा

कामकाजी लड़कियों के प्रति उदारता के एक तंत्र के रूप में वृहत आर्थिक नीति के महत्व के बारे में उल्लेख करने के बाद मैं दो ग्रामीण युवा लड़कियों—नैनी और खैरुम की दशा का वर्णन करना चाहूंगी।

नैनी

भरतपुर जिले में, 57 परिवारों का एक छोटा-सा गांव है इतरामपुरा। वहां की मीण जाति (यह उस क्षेत्र की अनुसूचित जनजाति है जिन्हें पहले डाकुओं के नाम से जाना जाता था) की 11 वर्षीय लड़की है नैनी। उनका 9 लोगों का एक संयुक्त

परिवार है जिसमें माता-पिता, चाचा-ताऊ, एक चाची तथा एक छोटा भाई है। इनके पास 8 बीघे जमीन है इससे होने वाली पैदावार ही उनकी जीविका का साधन है। मौसम के अनुसार ये कभी इस पर मजदूर लगाकर खेती करते हैं तो कभी दूसरे लोगों को खेती करने के लिए जमीन किराए पर दे देते हैं। पिता और चाचा खुदाई, बुआई, जुताई का काम करते हैं जबकि नैनी, उसकी मां और चाची मूंगफली की निराई तथा छटाई और घास काटने का काम करती हैं।

प्रातः 6 बजे उठकर नैनी सबसे पहले एक घंटा गोबर के उपले बनाने का काम करती है। उसके बाद कुएं पर जाना और पानी भर कर लाना। घर आकर घर-आंगन की सफाई करना। 7.30 बजे चक्की में गेहूं पीसना-छानना, चूल्हा जलाना और रोटी बनाने में अपनी मां की मदद करना। इसके बाद सारा परिवार बैठ जाता है और पीतल की थालियों में दलिया और बाजरे की रोटी खाता है।

सुबह के खाने के बाद नैनी बर्तन साफ करती है। परिवार के लिए कुछ खाना बांधने के बाद वह अपनी मां के साथ खेत पर चली जाती है जो घर से लगभग 3 किलोमीटर दूर इतरामपुरा और महतोली के बार्डर पर है। सितम्बर में एक-चौथाई खेत पहाड़ी-मिर्चों से भरा होता है और बाकी हिस्से को अगली फसल के लिए जोता और तैयार किया जा रहा होता है। वह और उसकी मां मिर्च की तुड़ाई और छंटाई का काम करते हैं। यह काम 9 बजे से 12 बजे तक चलता है। तब ये दोनों घर खाना बनाने चले जाते हैं और पिता व चाचा खेत पर ही काम करते रहते हैं।

नैनी आलू काटती है, उसकी मां रोटी बनाती है। खाना खाने के बाद वह बर्तन साफ करती है और फिर दोबारा कुएं पर पानी लेने जाती है। कुएं से पानी खींचते हुए उसे दो साल हो गए हैं इसलिए वह आसानी से पानी खींच लेती है।

दोपहर 2.45 बजे के बाद नैनी फिर खेत पर चली जाती है, वहां अपने पशुओं के लिए घास काटती है। लगभग 4.00 बजे घास की एक बड़ी गठरी बांधकर, सिर पर रखकर घर आती है। चारा काटने और पशुओं के लिए उसे तैयार करने का काम चाचा करता है।

उनकी गारा-मिट्टी की झोंपड़ी के पास ही पशुओं को बांधने का छप्पर है, जहां एक छोटी-सी कोठरी है जिसमें उपले और ईंधन की लकड़ी रखी होती है। ईंधन की लकड़ी इकट्ठी करने के लिए भी नैनी और उसकी चाची को जंगलों में जाना पड़ता है। इसके बाद नैनी उपलों और लकड़ी से चूल्हा जलाकर दलिया बनाती है। तब वह दूसरी बार झाड़ू-बुहारी करती है।

शाम का खाना प्रायः चाची बनाती है। चूंकि आजकल वह बीमार है इसलिए आजकल नैनी और उसकी मां मिल-जुल कर खाना बनाती हैं।

खाना तैयार हो जाने के बाद नैनी की दिनचर्या पूरी हो जाती है। तब उसे थोड़ा आराम मिलता है। उस समय घंटा-आधा-घंटा वह अपने छोटे भाई के साथ खेलती, हंसी-मजाक करती है। सायं 7.30 बजे जब खाने का समय हो जाता है तो वह सारे परिवार को दलिया, दूध और बाजरे की रोटी परोसती है और फिर वह भी सभी के साथ मिलकर खाना खाती है। रात के समय घर में तेल का दीया जलता है।

खैरुम

खैरुम एक 12 वर्षीय मुस्लिम लड़की है जिसका पिता काफी बूढ़ा है, अपनी कोई जमीन नहीं है, खेती-मजदूरी उसके बस का काम नहीं रहा इसलिए बेचारा भीख मांगता है। वह अपने और आस-पास के गांवों में भिक्षा मांगने जाता है।

खैरुम का घर पश्चिम बंगाल के बीरभूम जिले के पूर्व में बसे कुइता गांव में है जहां अधिकतर मुसलमान परिवार ही रहते हैं। इस गांव में पानी की कोई कमी नहीं है। इसलिए सारा साल हरियाली रहती है। कुइता गांव में गारा-मिट्टी के घर हैं, चारों ओर नारियल के पेड़, पानी से भरे तालाब, धान से भरे खेत हैं। वह अपने पिता, दो भाइयों और एक बहन के साथ गारा-मिट्टी की बनी झोंपड़ी में रहती है जिसके साथ ही अपना एक छोटा-सा आंगन भी है।

खैरुम खातून, उसके भाई और बहन स्कूल नहीं जाते हैं क्योंकि एक तो उनके पास पहनने के लिए अच्छे कपड़े नहीं हैं और दूसरे, स्कूल में कोई फीस न होने के बावजूद भी, समय-समय पर पढ़ाई में होने वाला खर्च जुटा पाने की उनकी क्षमता नहीं है। उसके भाई अपना सारा समय 'पिट्ठू' और 'गुल्ली-डंडा' खेलने में बिताते हैं।

जबकि उसके भाई खेलते रहते हैं, यह खैरुम ही है जो वास्तव में घर को सम्भाल रही है। वह एक साल स्कूल गई, लेकिन जब उसके पिता गम्भीर रूप से बीमार हो गए तो घर को सम्भालने की वजह से उसे स्कूल छोड़ना पड़ा।

खैरुम अपने ही गांव के एक जमींदार के यहां काम करने जाती है जहां उसे खाना और एक रुपया रोज मिलता है। यह राशि उनके परिवार का पेट भरने का सहारा है। जब वह जमींदार के यहां नहीं जाती तो वह घर के लिए ईंधन इकट्ठा करती है। घर की सफाई करती है, पानी भरती है।

उसे जमींदार के घर सुबह 6 बजे जाना होता है जो उसके घर से तकरीबन 2 किलोमीटर दूर है। वहां पहुंचकर सबसे पहले

वह बर्तन साफ करती है। फिर कच्चे फर्श को लीपती है जिसमें एक घंटा लग जाता है। तब खैरुम पास के तालाब से पानी लेने जाती है। पानी लेने उसे दो बार जाना पड़ता है जिसमें दो घंटे लग ही जाते हैं।

फिर वह सब्जी काटती है, मसाले पीसती है, इस काम में एक घंटा लग जाता है। तब मालकिन उसे उबले हुए चावल खाने को देती है जिसे वह एक मिट्टी के कसोरे में लेती है।

दोपहर में, जब मालकिन आराम करती है, तब खैरुम उसके बच्चे को अपनी गोद में रखती है, उसे लोरियां सुनाती है। सायं 4.00 बजे जब मालकिन उठती है तब खैरुम को फिर पानी लेने तालाब पर जाना होता है। वहां से आकर वह बर्तन साफ करती है। शाम को फिर सब्जी काटना और जब मालकिन खाना बनाए तब तक बच्चे को अपनी गोदी में रखना उसी का काम है। रात के खाने में उसे थोड़े-से चावल और सब्जी की तरी मिलती है। रात 8 बजे इस खाने को खाने के बाद लगभग 15 घंटे के अन्तराल के बाद खैरुम वापस घर पहुंचती है। यह है दिनचर्या इस 12 वर्षीय बालिका की।

तुलनात्मक विवेचन

नैनी और खैरुम ऐसी 70 प्रतिशत लड़कियों में से हैं जो हमारे ग्रामीण भारत में रह रही 5 से 14 वर्ष की आयु के बीच की है और जिन्होंने स्कूल का दरवाजा तक नहीं देखा है। ऐसा लगता है कि ऐसी स्थिति शायद तब तक बनी रहेगी जब तक उनके माता-पिता इतना कमाने लगें कि उन्हें परिवार के जीवन यापन के लिए काम न करना पड़े अथवा बिना किसी लागत पर बच्चों की अच्छी देखभाल के केन्द्र न बन जाएं, लड़के और लड़की के बीच का भेदभाव खत्म न हो जाए और ईंधन और पानी घर के पास ही परिवार के वित्तीय साधनों की पहुंच में न हों।

जब ये लड़कियां बड़ी हो जाएंगी तो इनका विवाह शायद आस-पास के गांव में हो जाएगा जहां खेती होती होगी, वहां इनके बच्चे होंगे और ये वैसा ही जीवन बसर करती रहेंगी जैसा ये विवाह से पूर्व कर रही थीं, बस खाना बनाने और पहले कुछ वर्षों में बच्चों का लालन-पालन करने की जिम्मेवारी बढ़ जाएगी।

जबकि नैनी और खैरुम एक प्रकार से बालिका महिलाएं अथवा 'माता' का दूसरा रूप हैं, राजस्थान और बंगाल के बीच दोनों की स्थिति में काफी भिन्नता है। राष्ट्रीय आंकड़ों जैसे जनगणना और राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण व अन्य अध्ययनों से पता चलता है कि श्रम बल में लड़कियों और महिलाओं का योगदान बंगाल की तुलना में राजस्थान में चार गुना है। इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि बंगाल की बजाय राजस्थान में मजदूरी रोजगार में महिलाएं कहीं अधिक संख्या में लगी हुई हैं।

देश के अलग-अलग स्थानों पर इस भिन्नता को संस्कृति के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है। संक्षेप में, बंगाल में 'महिलाओं को दूसरे के काम करने' के लिए भेजना परम्परा से अच्छा नहीं माना जाता। इससे 'परिवार के सम्मान को ठेस' पहुंचती है। दूसरी ओर, कठोरता से न सही किन्तु मार्मिकता से सही, महिलाओं को काम पर भेजने या भीख मांगने पर कोई परम्परागत रोक-टोक नहीं है। इस दुहरी सोच का एक सफल चित्रण सत्यजीत रे की फिल्म 'महानगर' में किया गया है जहां पुत्री एक कामकाजी युवति है जो परिवार के दो टूक का सहारा है, पर फिर भी उसे एक आज्ञाकारिणी की तरह रहना पड़ता है और अपने परिवार के पुरुषों से दबना और परम्पराओं से चली आ रही शालीनता को अपनाना पड़ता है।

हालांकि पश्चिम बंगाल में महिलाओं के लिए इस 'सम्मान' का दूसरा पहलू यह है कि राजस्थान के मुकाबले बंगाल में गांव की लड़कियों को अधिक संख्या में स्कूल जाते देखा जा सकता है। मजे की बात तो यह है कि यहां स्कूल जाने वाले लड़कों की उपस्थिति कम है। वास्तव में जब हमने अध्ययन किया तो हमने देखा कि जो काम राजस्थान में लड़कियों को करने पड़ते हैं, वे काम बंगाल में लड़के करते हैं दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि बंगाल में महिलाओं के दायित्वों को पुरुष निभाते हैं।

युवा लड़कियों के दैनिक काम-काज में समानताओं और भिन्नताओं को दर्शा कर मैंने यह सुझाव दिया है कि हमें सांस्कृतिक मान्यताओं में बदलाव लाना होगा और आर्थिक दृष्टिकोण के संदर्भ में केवल युवकों के बारे में सोचने का परित्याग करना होगा। सभी को एक समान तरजीह देने की नीति ही युवतियों को इस दयनीय स्थिति से उभार सकती है।

कुछ बुनियादी प्रश्न

यह स्वाभाविक है कि बाल श्रमिकों के लिए इस प्रकार का विश्लेषण करने से बालिकाओं की स्थिति को बल मिलेगा। बल्कि उनके साथ हो रहे भेदभाव की तस्वीर भी उजागर होगी। उनके प्रति भेदभाव को कम करने और उन्हें एक अच्छा दर्जा दिलवाने के लिए हमें उनके लिए अच्छा पोषाहार और उनके स्वास्थ्य की ओर अधिक ध्यान देना होगा। साथ ही एक ऐसा रास्ता निकालना होगा जिससे वे शिक्षा के दायरे में आ सकें। ये तीन पहलू अत्यंत गम्भीर हैं और इनकी ओर तत्काल ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

दूसरे, भारत में महिला आंदोलन के सम्मुख एक अहम मसला यह है कि उनके लिए शिक्षा का तरीका क्या होना चाहिए जिससे ज्यादा-से-ज्यादा युवतियां, लड़कियां, और महिलाएं इस ओर बढ़ने के लिए प्रोत्साहित और प्रेरित की जा सकें। यह समाधान तभी हो सकता है जब पाठ्य पुस्तकों में आमूल-चूल परिवर्तन किया जाए।

दूसरा सुचर्चित मुद्दा यह है कि तकनीकी शिक्षा और प्रशिक्षण में महिलाओं को पर्याप्त स्थान नहीं मिल पाता जिसका कारण पुनः यही कहा जाता है कि उनमें कुछ कर पाने की क्षमता की कमी है। यह एक सही और महत्वपूर्ण टिप्पणी है और इसका निवारण नीति और कार्यक्रम के जरिए ही हो सकता है।

महात्मा गांधी ने कहा था कि समाज में समानता लाने के लिए स्कूलों में भौतिक कार्यों जैसे खेत जोतना और आय कमाने के कार्यों जैसे कताई, बुनाई और बढ़ईगिरी का काम आदि के पीरियड होने चाहिए। उनका अभिप्राय बच्चों को श्रम से दूर रखने का नहीं बल्कि मेहनत करने को 'सम्मान' दिलाने का था।

आज हमें शिक्षा, चाहे वह बच्चों के लिए हो अथवा बड़ों के लिए, की दिशा और रूपरेखा की एक निश्चित परिकल्पना करनी होगी नहीं तो यह हमारी परम्पराओं के लिए हानिकारक होगा और इस क्षति को कभी पूरा नहीं किया जा सकेगा क्योंकि यह निरन्तरता पर आधारित प्रक्रिया है।

मैंने इस लेख में बालिकाओं से सम्बन्धित कुछ विशेष पहलुओं को लिया है जिनका प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्बंध उनके रोजगार अथवा मजदूरी, उन्हें प्रगति की राह पर अग्रसर करने के लिए संस्कृति और पर्यावरणीय पहलुओं, शिक्षा के स्वरूप से है। यदि इनकी ओर नीतियों और कार्यक्रमों के जरिए ध्यान दिया जाता है तो हम निश्चय ही महात्मा गांधी के स्वप्न को साकार कर सकेंगे।

अनुवाद : शशि बाला

बिटिया...?

विनोद हिमाचली

इस त्रिवेणी की धरा पर
तुम्हारी मैं बिटिया हूं
अंधकार से प्रकाश पाने के लिए
पल/प्रतिपल छटपटा रही हूं...।

मेरे मन में
गूंजती हुई प्रतिध्वनि
यह अनचाही कथा
मुझे सुनाती है
अरी...अभागिन।
क्यों तुमने जन्म लिया
क्या जीवन भर ही तुम
समाज में प्रताड़ना
उत्पीड़न/कुपोषण
जैसी व्याधियों को
सह पाओगी...?

जीवन में जीने का
है सभी को अधिकार
इसी विषय पर
मैं रात और दिन
करती हूं विचार
पर न जाने कब से
प्रचलित रूढ़िवादी विश्वासों में
अभी तक जकड़ा है समाज...।

मैं प्रतीक्षा में हूं—
लालिमा भरी उषा की
जब वह हंसते हुए
अपने पतिदेव सूर्य के संग
मेरे समीप आयेगी
और मेरे सिर पर
हाथ रख कर
यह गीत मुझे सुनायेगी
बिटिया!
धैर्य से तुम लांघो
समाज में व्याप्त
सभी अवरोध
और जिस दिशा में भी
तुम जाओगी
एक समर्थ नजर
और एक नई दिशा से
स्वयं बंद अंधेरे
में प्रगति की राह
तुम्हें दिखलाऊंगी....।।

द्वारा क्षेत्रीय प्रचार कार्यालय
सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
गुरुनानक नगर, रायपुर
(मध्य प्रदेश)-492006

बाल श्रमिक : कहां है इनकी समस्याओं का अन्त?

मुनेश्वरी तिवारी

ट्रेन के रुकते ही कई अन्य कुलियों के साथ दो-तीन बच्चे भी डिब्बे में घुस आये और यात्रियों के सामने गिड़गिड़ाने लगे, 'बाबूजी सामान उतार दूं?' एक-दो कुली जो लाल कपड़े पहने थे और जिन्हें इस काम के लिए लायसेंस मिला हुआ था, इन बच्चों को बुरी तरह डांट-फटकार रहे थे और बार-बार उन्हें डिब्बे से नीचे उतरने को कह रहे थे। पर बच्चे इधर-उधर होकर फिर किसी यात्री के सामने जा खड़े होते, "लाइये साब, मैं ले चलूं।" इसी क्रम में एक बच्चा मेरे सामने भी आ खड़ा हुआ, "मेमसाब, आपका सामान ले चलूं? बाहर तक पहुंचाने का सिर्फ दो रुपये दे दीजियेगा।"

भारत में चाहे कोई गांव हो, कस्बा हो, नगर हो या महानगर, इस तरह के छोटे-छोटे बच्चों को तरह-तरह के काम करते देखा जा सकता है। माचिस फैक्टरी, चाय बागान, काजू प्रोसेसिंग, बीड़ी उद्योग, मछली पालन, होटल-रेस्तरां, हथकरघा, रिपेयर दुकानों तथा कृषि कार्यों में मुख्य रूप से बाल मजदूरों को कठिन श्रम करते देखा जा सकता है। इनके अतिरिक्त रास्तों पर सामान ढोते, कुली का काम करते, बूट पालिश तथा दीवारों पर रंग-रोगन करने वाले बच्चों की संख्या भी कम नहीं है। 1979 में 'भारतीय बाल कल्याण परिषद' ने बाल श्रमिकों पर एक सर्वेक्षण किया था जिसके अनुसार भारत में कुल श्रम शक्ति का एक-छठा भाग कामकाजी बच्चों का है और बाल श्रमिकों की यह संख्या हमारी बाल आबादी का आठ प्रतिशत है।

आखिर क्या कारण है कि इतनी बड़ी संख्या में मासूम बच्चों को, खेलने-पढ़ने की उम्र में, मेहनत-मजदूरी करनी पड़ती है? इसका मूल कारण है गरीबी। हमारे देश में 48 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा के नीचे का जीवन बसर करती है। ऐसे परिवारों के छोटे-छोटे बच्चों को परिवार के लिए रोटी जुटाने के लिए कठिन श्रम करना पड़ता है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के आकंड़ों के अनुसार आज विश्व में 10 करोड़ बच्चों को अपनी आजीविका के लिए मेहनत मजदूरी करनी पड़ रही है और इनमें से 2 करोड़ बच्चे सिर्फ भारत में हैं। अर्थात् पूरे विश्व के बाल श्रमिकों का पांचवा हिस्सा भारत में ही है। जबकि भारत में कानूनी तौर पर 14 वर्ष से कम उम्र के बालकों से मजदूरी करवाना गैर कानूनी है। ऐसा नहीं है कि सरकार इस स्थिति से अनभिज्ञ है, बल्कि दिन-प्रति-दिन बाल मजदूरों की बढ़ती संख्या से सरकार भी चिंतित है और इसी कारण समय-समय पर ऐसे कानून भी बनाए जाते रहे हैं जो बच्चों को सामाजिक-आर्थिक सुरक्षा प्रदान करें। इस समय देश में बाल मजदूरों के हित में 12 अधिनियम हैं जिनमें प्रमुख हैं– 1948 में बना फैक्ट्री अधिनियम, 1951 में बना प्लांटेशन माइंस लेबर अधिनियम, 1952 में बना लेबर एक्ट, 1958 में बना मर्चेन्ट्स शिपिंग एक्ट आदि। बाल रोजगार अधिनियम, चाय बागान श्रम अधिनियम, खान अधिनियम, औद्योगिक अधिनियमों की अवहेलना करके भारत में बाल श्रमिकों से किस तरह काम लिया जाता है और उनका कितना शोषण होता है, इसका विवरण बहुत ही कष्टप्रद है।

अन्तर्राष्ट्रीय जनसंख्या विकास संस्थान, बम्बई ने कुछ समय पूर्व एक सर्वेक्षण किया था जिसके अनुसार सिर्फ दिल्ली के रेलवे स्टेशन पर रोज 15-20 ऐसे बच्चे उतरते हैं जो गरीबी से तंग आकर अपने घरों से भागते हैं या जिनके मां-बाप खुद ही उन्हें कुछ कमाने के लिए शहरों की ओर भेज देते हैं। शहर में आकर ये बच्चे या तो भिखारी बनते हैं या मजदूर। ये बच्चे बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, उड़ीसा जैसे राज्यों से आते हैं जहां रोजगार के अवसर बहुत कम हैं। इसी रिपोर्ट में इस बात का भी उल्लेख किया गया है कि 14 वर्ष से कम उम्र के बाल श्रमिकों को 10 घंटे या उससे भी अधिक समय तक काम करना पड़ता है। कहीं-कहीं तो ये बच्चे 17-18 घंटों तक काम करते हैं, विशेष रूप से छोटे होटलों और रेस्तराओं में काम करने वाले बच्चे। इन जगहों पर इनके लिए कोई अवकाश का दिन भी नहीं होता और तनख्वाह के रूप में इतने कम पैसे मिलते हैं कि उससे ठीक से वे अपना खर्च भी नहीं चला पाते। इनके अलावा बूट पालिश करने वाले, अखबार बेचने वाले, रद्दी कागज, रबड़, प्लास्टिक, टिन आदि सामान इकट्ठा करने वाले हजारों-लाखों बच्चों का जीवन भी त्रासद ही है। आजकल बड़े-बड़े नगरों में छोटे-छोटे बच्चों को रिक्शा चलाते हुए भी देखा जा सकता है।

1979 में श्री एम. एस. गुरुपद स्वामी की अध्यक्षता में एक कमेटी ने बाल श्रमिकों पर एक सर्वेक्षण किया था और इसने जो निष्कर्ष निकाला था, वह अति भयावह है। कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार, "बच्चों के संदर्भ में श्रम तब एक बुराई का रूप धारण कर लेता है जब नियोक्ताओं द्वारा बच्चों से उनकी शारीरिक क्षमता के विपरीत काम लिया जाता है, जब उनके काम के घंटे निश्चित न हों और उनकी शिक्षा, मनोरंजन तथा आराम का ख्याल न रखा जाता हो और जब उन्हें ऐसे काम पर लगाया जाता हो जो उनके स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद हो या शरीर के लिए खतरनाक हो।"

कमेटी के अनुसार देश के हर हिस्से में बाल श्रमिकों की स्थिति एक जैसी ही है। सभी कानूनों को ताक पर रखकर बाल मजदूरों से काम लिया जाता है और शारीरिक, आर्थिक, मानसिक रूप से उनका शोषण किया जाता है। 1986 में बाल श्रमिक अधिनियम बनाकर 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के रोजगार पर पूर्णतया पाबंदी लगाई गई थी, लेकिन हकीकत यह है कि छोटे कल-कारखानें ही नहीं, लघु उद्योग भी इन्हीं बाल कलाकारों के बल पर चलते हैं। शिवकाशी के माचिस और आतिशबाजी उद्योग में, मिर्जापुर और श्रीनगर के कालीन व्यवसाय में, फिरोजाबाद के चूड़ी उद्योग में, मुरादाबाद के बर्तन उद्योग में, तमिलनाडु तथा केरल के बीड़ी कारखानों में, मद्रास, कन्याकुमारी तथा कलकत्ता के मत्स्य उद्योग में, तमिलनाडु और पश्चिम बंगाल के हथकरघा उद्योग में, असम के चाय बागानों और चाय कारखानों में बाल श्रमिकों का ही बाहुल्य है और इन उद्योगों और व्यवसायों में बाल श्रमिकों का जिस तरह शोषण हो रहा है, उसे अमानवीय ही कहा जायेगा।

बाल श्रमिकों का संख्या के हिसाब से सबसे अधिक शोषण शिवकाशी के माचिस और आतिशबाजी उद्योग में किया जाता है।वहां 50,000 से अधिक बच्चे काम करते हैं, जो सुबह सात बजे से लेकर शाम को छह-सात बजे तक काम में लगे रहते हैं। इन बच्चों को नाश्ते में पाव रोटी के दो टुकड़े और एक कप-चाय दी जाती है। इनकी मजदूरी रोजाना की तीन रुपये से पांच रुपये तक की है। आतिशबाजी बनाने वाली फैक्ट्रियों में, जहां गंधक और बारूद का प्रयोग होता है, ये बच्चे बिना किसी सुरक्षा के काम करते हैं। खतरनाक रासायनिक पदार्थ से काम करने के लिए भी बच्चों की ही नियुक्ति की जाती है। किसी तरह घायल हो जाने पर इन्हें मेडिकल सहायता भी नहीं दी जाती बल्कि उन दिनों काम पर न आने के कारण इन्हें पैसे भी नहीं मिलते। शिवकाशी में कुल श्रम शक्ति का 45 प्रतिशत बाल श्रमिक ही हैं और इनमें हजारों बच्चे ऐसे हैं जिनकी उम्र पांच वर्ष से भी कम है।

इसी तरह मिर्जापुर और श्रीनगर के कालीन उद्योग में करीब दो लाख बच्चे कार्यरत हैं, जिन्हें 16-17 घंटे काम करने के बाद 5 से 7 रुपये रोज प्राप्त होते हैं परन्तु पगार की स्थिति इससे भी भयावह चाय बागानों में है, जहां बाल श्रमिकों को 50 रुपये माहवार से कम तनख्वाह दी जाती है और इनमें से 65 प्रतिशत बच्चों को कोई साप्ताहिक अवकाश भी नहीं मिलता। मेघालय के निजी खदानों में 30 हजार बच्चे काम करते हैं और इनमें लड़कियों की संख्या भी कम नहीं है। केरल के क्विलोन में आठ बड़े मत्स्य प्रोसेसिंग यंत्र हैं जहां करीब 20 हजार बच्चे काम करते हैं। सुबह चार बजे से शाम सात बजे तक इन्हें काम करना पड़ता है और ज्यादातर मछली छीलने के काम पर इन्हें लगाया जाता है परन्तु इतनी कड़ी मेहनत के बाद भी इन्हें प्राप्त क्या होता है? एक किलो मछली छीलने पर 1.50 रुपये से 2 रुपये तक की मजदूरी। इसी तरह बम्बई में मत्स्य व्यापार के साथ ही अन्य काम धंधों में लगे बाल श्रमिकों की संख्या आज एक लाख से अधिक है। इनमें से अधिकतर बच्चों से नाजायज धंधे जैसे शराब की भट्ठी पर काम करना, शराब की बोतलों को एक जगह से दूसरी जगह पहुंचाना, जेब काटना, भीख मांगना जैसे कई अनैतिक और अपराधिक कार्य करवाए जाते हैं।

गरीबी के कारण त्रस्त इन बच्चों को असमय ही शारीरिक श्रम के क्षेत्र में उतरना पड़ता है, परन्तु इनकी इस मजबूरी का फायदा भी स्वार्थी और चालाक व्यापारी और उद्योगपति उठाते हैं। इस महंगाई के जमाने में भी आज इन्हें इतनी कम मजदूरी दी जाती है कि इनकी हालत बद से और बदतर होती जाती है। मजबूरीवश ये बच्चे इन काम-धंधों में फंसे पड़े हैं। किस भयानक रूप में इनका आर्थिक शोषण होता है, इसका अनुमान कुछ अन्य उद्योगों में दी जाने वाली मजदूरी से भी लगाया जा सकता है। महाराष्ट्र और तमिलनाडु में काजू प्रोसेसिंग और गुड़ बनाने वाले कारखानों में बाल श्रमिकों को प्रतिदिन एक रुपया से पांच रुपये तक की मजदूरी दी जाती है, जबकि लकड़ी के सामान बनाने वालों को रोजाना 2 रुपये से 30-40 रुपये तक, कपड़ा मिलों में 2 रुपये से 5 रुपये तक और रसायन कारखानों में एक रुपया से दो रुपये तक। ठीक यही स्थिति देश के अन्य उद्योगों में भी है। इतनी कम मजदूरी देने के बाद भी न तो इन्हें कोई मेडिकल सहायता दी जाती है न अवकाश के दिनों की मजदूरी। यहां तक कि कानून का उल्लंघन करके किसी भी खतरनाक काम पर इन्हें लगा दिया जाता है। इसी तरह 17 वर्ष से कम आयु वालों को रात्रि की पाली में काम देना गैर कानूनी है, लेकिन इसकी चिन्ता कोई नियोक्ता नहीं करता। बहुत बड़े पैमाने पर निजी कल-कारखानों में ये बच्चे अपने खून को पानी

बनाते हैं पर इनकी जिंदगी दो बूंद शुद्ध पानी के लिए भी तरस कर रह जाती है।

आखिर बाल श्रमिकों की दिन-प्रति-दिन बढ़ती संख्या का कारण क्या है? क्यों एक बच्चा पढ़ने-लिखने और खेलने-कूदने की उम्र में ईंट-पत्थर-गारा ढोता है, लोहा कूटता है, रिक्शा चलाता है? इसके कारणों पर ध्यान देना बहुत जरूरी है। इन बच्चों की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों पर हमें ध्यान देना होगा। वैसे, यह ठोस सत्य है कि बच्चे सामाजिक कारणों से कम, आर्थिक कारणों से अधिक श्रमिक बनते हैं। किसी कारण से विद्यालय से निकाले गए बच्चे भी पढ़ना-लिखना छोड़कर किसी काम-धंधे में लग जाते हैं। पर मुख्य कारण तो गरीबी ही है। गरीब मां-बाप अपने बच्चों से धनोपार्जन कराने के लिए विवश होते हैं। उनके लिए बच्चे की उम्र नहीं, रोटी का प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण होता है। निर्धनता के कारण इन बच्चों की जिंदगी छोटी उम्र में ही भार बन जाती है और इनके लिए भविष्य पूर्णतया अंधकारपूर्ण हो जाता है। यों गहराई से देखें तो अधिकांश मां-बाप की निर्धनता का मुख्य कारण यह है कि वे अपने परिवार को सीमित नहीं रखते। जिन घरों में सीमित परिवार के प्रति चेतना पैदा हो गई है वहां गरीबी का ऐसा अभिशाप प्रायः देखने को नहीं मिलता।

प्रश्न यह भी उठता है कि बाल श्रमिकों की इतनी मांग क्यों है? जिस देश में बेरोजगारों की इतनी बड़ी संख्या हो, वहां भी वयस्क व्यक्ति को काम पर न रखकर कम उम्र के बालक को काम पर क्यों लगाया जाता है? इसका स्पष्ट कारण यही है कि उत्पादकों को बाल श्रमिक बहुत सस्ते दामों में प्राप्त होते हैं और उनसे ज्यादा घंटे काम लिया जा सकता है। फिर बोनस, भविष्य निधि, ग्रैचुएटी आदि के अधिकारों से ये बच्चे वंचित होते हैं, अतः इनके श्रम का भरपूर शोषण करने के साथ ही उत्पादकों को आर्थिक लाभ भी होता है। फिर वयस्कों की अपेक्षा बच्चे अधिक आज्ञाकारी और विश्वसनीय सिद्ध होते हैं। सबसे दुखद स्थिति तो यह है कि इन बच्चों की तकलीफों को सुनने वाला कोई नहीं। न तो इनका कोई संगठन है, न ही बन सकता है, और वयस्क श्रमिक संगठन इन बाल श्रमिकों की समस्याओं पर ध्यान देते ही नहीं क्योंकि वे बच्चों को श्रमिक मानते ही नहीं।

बाल श्रमिकों की विकट समस्या से आज पूरा विश्व जूझ रहा है, विशेष रूप से तीसरी दुनिया के देश। कुछ देशों में बाल श्रमिकों पर पूर्णतया प्रतिबंध भी लग चुका है और बच्चों से मजदूरी कराने वाले उत्पादकों को दंडित भी किया जाता है। भारत में भी उस तरह के कानून हैं, किन्तु सिर्फ किताबों में ही, क्योंकि प्रतिबंधित होने के बावजूद बाल-श्रमिकों की संख्या यहां बढ़ती ही जा रही है। भारत में इन बाल श्रमिकों की पारिवारिक स्थितियां ऐसी हैं कि उनके रहते बच्चों को श्रमिक बनने से रोक पाना आसान नहीं है। झोपड़ियों और गंदी बस्तियों में दिन गुजारते, गंदे, फटे-पुराने कपड़ों के बीच अपने तन को ढके, भरपेट भोजन पाने की आस में जीते, दो बूंद स्वच्छ-शुद्ध पानी के लिए तरसते इन बच्चों की दयनीयता तभी समाप्त हो सकती है जब इनकी समस्याओं को सही ढंग से समझा जाये और दूर करने की कोशिश की जाये। विशेष रूप से आर्थिक कठिनाइयों को, जो इस समस्या का मूल कारण है। वर्ना इन बच्चों का शोषण यों ही होता रहेगा और सुविधा-सम्पन्न लोगों की सुविधाओं को जुटाने के लिए ये अपने को यों ही नष्ट करते रहेंगे।

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू बराबर कहा करते थे, "इन्हीं नौनिहालों से भारत का नवनिर्माण होगा।" किन्तु आज परिस्थितियां बिल्कुल उल्टी हैं और नेहरू के सपने बिखरते हुए नजर आ रहे हैं। बढ़ती आर्थिक कठिनाइयां, महंगाई, जनसंख्या और बेरोजगारी के कारण आज देश के नौनिहाल फटेहाल होकर श्रमिक बनने को मजबूर हो रहे हैं। भारतीय समाज में गरीबी इस तरह पैठी हुई है कि वहां शिक्षा और स्वास्थ्य से अधिक महत्वपूर्ण श्रम को माना जाता है। वहां शोषण की बात कोई नहीं सोचता, बल्कि रात को मिलने वाली रोटी की बात सोचता है। अतः इन बच्चों की जिंदगी की दयनीयता तभी समाप्त हो सकती है जब इनकी समस्याओं को सही ढंग से सहानुभूतिपूर्ण और मानवीय दृष्टि से समझा जाये और उन्हें दूर करने की कोशिश की जाये।

10101-बी-4
वेस्ट गोरख पार्क
शाहदरा, दिल्ली-32

बाल श्रम—एक गंभीर समस्या

भारत डोगरा

कुछ समय पहले जब मैं बांदा जिले के माणिकपुर विकास खंड का भ्रमण कर रहा था तो मुझे ऊंचा डीह ग्रामसभा के चौर गांव में हरिजन लड़का मिला। उसने अपनी जो कहानी बतायी, और स्थानीय लोगों ने भी इसकी पुष्टि की, वह इस प्रकार है। मनभरन नाम के इस लड़के का पिता एक ब्राह्मण जमींदार का बंधुआ मजदूर है। जब से लड़के ने होश संभाला है, उसने अपने पिता को बंधुआ मजदूर के रूप में देखने की ही याद है। उसके पिता को कुछ जमीन दी गयी थी, लेकिन जमींदार ने इस पर जबरन खेती करना शुरू कर दिया। यही नहीं खेती के लिए उसी के बैलों का इस्तेमाल किया गया। उसके परिवार ने मनभरन की मां के अंतिम संस्कार के लिए जमींदार के पास चांदी के कुछ गहने गिरवी रखे थे, लेकिन कई साल बंधुआ मजदूरी करते रहने के बाद भी जमींदार ने इन गहनों को नहीं लौटाया। मनभरन का पिता तपेदिक से मर गया। कई बार उसे बीमारी की वजह से काम पर जाने की ताकत नहीं होती थी, मगर बंधुआ मजदूर होने के कारण उसे जाना पड़ता था। अगर कभी वह काम पर नहीं जाता तो उसे पेड़ से बांध दिया जाता और लाठियों और जूतों से उसकी पिटाई की जाती थी। पिता को मार से बचाने के लिए मनभरन को काफी कम उम्र से ही अपने पिता के ऐवज में काम करना पड़ा। शुरू में वह जमींदार के जानवर चराया करता था। इस काम के लिए उसे भोजन और कुछ कपड़े दिये जाते थे। बाद में उसने जमींदार के खेत जोतना भी शुरू कर दिया हालांकि उसकी उम्र अभी इस लायक नहीं हुई थी। पिता की बीमारी की वजह से उसे यह सब करने को मजबूर होना पड़ा। एक दिन मनभरन को कमजोर वर्गों की समस्याओं को हल करने के लिए सामाजिक कार्यकर्ताओं और अधिकारियों की बैठक के बारे में पता चला। उसने वहां जाकर अपनी पूरी कहानी उन लोगों को बतायी। पूछताछ के लिए अधिकारी भेजे गये लेकिन जमींदार ने बड़ी चालाकी से उसके पिता से उसकी उपजाऊ जमीन के बदले में पथरीली जमीन की अदलाबदली के कागजात पर दस्तखत करा लिये।

जांच-पड़ताल का काम काफी लम्बे समय तक चलता रहा। इस बीच मनभरन का पिता चल बसा। कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं और अफसरों के लगातार दबाव की वजह से उसे अपनी जमीन तो वापस मिल गयी लेकिन वह इस पर खेती नहीं कर सकता था। बंधुआ मजदूरी की रिहाई और उनके पुनर्वास के कार्यक्रम के अंतर्गत उसे बंधुआ मजदूरी करने से मुक्ति मिल गयी। उसे कुछ बकरियां भी दी गयीं। आजकल वह कभी-कभार मिल जाने वाले दिहाड़ी के काम और बकरियों के जरिए अपना पेट पालता है।

मनभरन जैसी कई दुखद कथाएं आम तौर पर दुनिया की निगाहों में नहीं आ पाती हैं। इनका पता तभी चल पाता है जब कुछ खास क्षेत्रों में शोषण वाली इस व्यवस्था का पता लगाने के लिए विशेष प्रयास किये जाते हैं, लेकिन इन प्रयासों में भी आंशिक सफलता ही मिल पाती है। रायपुर जिले में बंधुआ मजदूरों का पता लगाने और उनको मुक्त कराने के लिए हाल में जो प्रयास किये गये तो पेयजोली नाम की बाल श्रमिकों की प्रथा का पता चला। इसमें 6 से 9 वर्ष तक के बाल मजदूर मालिक के घर पर सुबह से लेकर रात तक काम करते हैं। इस काम के बदले में उन्हें दो रुपया सालाना मजदूरी, सुबह-शाम का भोजन और नमक (पासिया) दिया जाता है।

शहरों में बाल मजदूरों की दुर्दशा का एक और बदतर पक्ष सामने आता है। उनसे जोखिम भरे ऐसे काम कराए जाते हैं जिससे उनके स्वास्थ्य पर बड़ा बुरा असर पड़ता है। हालांकि देहात में भी जोखिम वाले कार्यों की कोई कमी नहीं है। बच्चों से चारा काटने और कूटने जैसे कई मुश्किल काम कराए जाते हैं। लेकिन शहरों में जोखिम वाले कामों की भरमार है। कल-कारखानों में अगर दुर्घटनाएं नहीं भी होती हैं जो भी कुछ साल तक जोखिम के काम करते रहने से बाल-मजदूर के स्वास्थ्य पर सदा के लिए बुरा असर पड़ता है ऐसा इसलिए होता है क्योंकि बच्चों को स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक, भीड़भाड़

के स्थानों पर काम पर लगाया जाता है। इन जगहों पर जहरीले रसायनों, अधिक गर्मी तथा अन्य कारण से बच्चों के स्वास्थ्य पर स्थायी रूप से बुरा असर पड़ता है।

कुछ साल पहले मैंने उत्तर प्रदेश में फिरोजाबाद में कांच का सामान बनाने वाले एक कारखाने का दौरा किया। मुझे यह देखकर बड़ा आघात लगा कि बच्चों को ऐसे कामों में लगाया जाता है जिनमें उन्हें भीषण ताप सहना पड़ता है। भट्टियों की आंच झेलने के आलावा इन बच्चों को आधा पिघला गर्म शीशा उठाकर ले जाना पड़ता है। यह काम बेहद जोखिम का है और जरा-सी असावधानी से शरीर जल सकता है।

यही नहीं, राजधानी दिल्ली में वजीरपुर औद्योगिक क्षेत्र में इस्पात के बर्तन बनाने वाले कारखानों के मजदूरों की समस्याओं का अध्ययन करते समय मुझे जोखिम भरे काम करने वाले बच्चों का पता चला। यहां कई बाल मजदूर कारखानों से शाम को लौटते समय सिर से लेकर पांवों तक भट्टी की काली धूल में सने रहते हैं। कुछ बच्चे तो रात को भी यही काम करते हैं। उनके कपड़े, चेहरा, नाक और यहां तक कि समूचा शरीर काली धूल से भरा रहता है। इस बात का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है कि एक-आध साल तक इस तरह का काम करते रहने से बाल मजदूरों के स्वास्थ्य पर कितना बुरा असर पड़ता होगा। इन बाल मजदूरों में कुछ तो चौदह वर्ष या इससे भी कम उम्र के होते हैं। इनको इस्पात को चमकाने या ऐसे ही अन्य कामों में लगाया जाता है इस तरह के काम में भट्टी से निकलने वाली कार्बन की धूल बच्चों के स्वास्थ्य के लिए काफी नुकसानदेह होती है।

उत्तरी-दिल्ली की कई झुग्गी-झोपड़ी बस्तियों में पूछताछ करने पर मुझे पता चला कि इस तरह का कार्य वजीरपुर औद्योगिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है। यह कई अन्य लघु उद्योग इकाइयों में भी होता है। ये इकाइयां आमतौर पर झुग्गी-झोपड़ी वाले इलाकों में स्थित हैं। उदाहरण के तौरपर जहांगीरपुरी के 'के' ब्लाक में मैंने कई ऐसी वर्कशाप देखीं जिनमें इस्पात को चमकाने का काम बच्चों द्वारा किया जाता है।

यहां यह बात ध्यान देने की है कि शहरों में जोखिम भरे कार्यों में बाल-श्रमिकों के काम करने का कारण ग्रामीण क्षेत्रों की गरीबी भी है। वजीरपुर में इस्पात के बर्तन बनाने वाले कारखानों के मजदूरों के जिन-जिन परिवारों से मैंने संपर्क किया उनमें से अधिकांश उत्तरी बिहार के गांवों से आए थे जहां हर साल बाढ़ से भारी तबाही होती है। गांव छोड़ने पर मजबूर होकर जब ये लोग शहरों में आते हैं तो भीषण गरीबी के कारण उन्हें तथा उनके बच्चों को भारी जोखिम भरे काम करने पर मजबूर होना पड़ता है। इस तरह कई शहरी क्षेत्रों में जोखिम वाले कामों में बाल-मजदूरों की समस्या का मूल कारण ग्रामीण क्षेत्र के कमजोर वर्गों की दयनीय सामाजिक-आर्थिक स्थिति ही है। इसके अलावा एक अन्य कारण शहरों में कम मजदूरी भी है।

दिल्ली के संदर्भ में एक और प्रश्न विशेष रूप से उठाया जाना आवश्यक है। आखिर यहां कब तक मौजूदा कानूनों का खुल्लम-खुल्ला उल्लंघन होता रहेगा। कब तक राजधानी के भीड़-भाड़ भरे इलाकों में इतनी बड़ी संख्या बाल-श्रमिकों को जोखिम भरे कार्यों में लगाया जाता रहेगा। बांदा या रायपुर जिले के किसी दूर-दराज के गांव के बारे में श्रम विभाग की इस बात को कुछ हद तक उचित ठहराया जा सकता है कि इतने दूर के गांव में बाल-श्रम को रोक पाना उनके बस की बात नहीं है लेकिन वजीरपुर और जहांगीर पुरी के इस्पात कारखानों में बर्तनों को चमकाने का काम करने वाले बच्चों के लिए यह बात नहीं कही जा सकती। यह तथ्य नहीं भुलाया जा सकता है कि मजदूर संघों, वकीलों, पत्रकारों आदि ने कई बार इस समस्या की ओर अधिकारियों का ध्यान खींचा है। समाचार पत्रों और पर्चों के जरिए भी इस समस्या को उठाया जा चुका है।

उपर्युक्त उदाहरण से यही निष्कर्ष निकलता है कि बाल श्रमिकों की समस्याओं के बारे में अनेक मंचों से अनेक बार ध्यान आकृष्ट कराये जाने के बावजूद अभी इस क्षेत्र में काफी कुछ किया जाना बाकी है। बाल मजदूरों को उनकी इस दुर्दशा से बचाने के लिए श्रम कानूनों को लागू करने वाले सरकारी तंत्र को चुस्त-दुरस्त करना बेहद जरूरी है। इस गंभीर समस्या के समाधान का यही रास्ता है।

बाल-मजदूरों के उपर्युक्त उदाहरण ऐसे हैं जिनमें या तो उनका भारी शोषण होता है या फिर उन्हें बेहद जोखिम वाले माहौल में काम करना पड़ता है। इस समस्या की गंभीरता को देखते हुए यह जरूरी है कि इस ओर सबसे पहले ध्यान दिया जाए ताकि शोषण अथवा जोखिम वाले कार्यों में लगे बाल श्रमिकों को अत्याचार से बचाया जा सके।

इस बात में कोई संदेह नहीं है कि श्रम विभाग अगर मुस्तैदी से काम करे तो बाल-मजदूरों की समस्याओं को काफी हद तक दूर किया जा सकता है लेकिन इसके साथ-साथ में यह बात जोर देकर कहना चाहता हूं कि जब तक लोगों की सामाजिक-आर्थिक दुर्दशा को दूर करने की ओर ध्यान नहीं दिया जाता तब तक इस समस्या का हल नहीं ढूंढ़ा जा सकता। इन्हीं सामाजिक-आर्थिक मजबूरियों के कारण गरीब माता-पिता को अपने बच्चों को जोखिम वाले कामों में लगाने

पर मजबूर होना पड़ता है। देखा गया है कि जब कोई परिवार कर्ज के भारी बोझ से दब जाता है या उसकी आमदनी पेट भरने के लिए पर्याप्त नहीं होती तो उसे अपनी स्थिति से समझौता करना पड़ता है और बच्चों को भारी जोखिम वाले धंधों में भेजने पर मजबूर होना पड़ता है। ऐसी हालत में अगर कारखानों में छापे मारकर बाल मजदूरों को छुड़ा भी लिया जाए तो इससे समस्या हल होने वाली नहीं है। हां इतना अवश्य है कि इससे इन बच्चों को कुछ समय के लिए राहत मिल सकती है। कुछ समय बाद अपनी आर्थिक मजबूरियों की वजह से ये बच्चे फिर से जोखिम वाले किसी और काम को करने के लिए मजबूर हो सकते हैं।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि बच्चों से मजदूरी कराने की प्रथा को अन्य बातों से अलग-थलग करके नहीं सुलझाया जा सकता। इसके लिए एक बड़े प्रयास की जरूरत होगी जिसके अंतर्गत समाज से असमानता, शोषण और गरीबी को दूर करना आवश्यक होगा तभी माता-पिता को अपने बच्चों को जोखिम और शोषण वाले काम धंधों में लगाने की मजबूरी से बचाया जा सकेगा।

यहां बच्चों के शोषण को समाप्त करने के तरीकों के बारे में उठे एक अन्य विवाद का जिक्र किया जा सकता है। निर्यात की जाने वाली कई वस्तुओं के निर्माण में बाल-मजदूरों की भागीदारी रहती है। इसका एक उदाहरण वाराणसी और मिर्जापुर के आस-पास का कालीन उद्योग है। कुछ लोगों का कहना है कि पश्चिमी देशों में यह अभियान चलाया जाना चाहिए कि जब तक वाराणसी-मिर्जापुर इलाके के कालीन उद्योग में बच्चों से मजदूरी कराने की प्रथा समाप्त नहीं हो जाती वे यहां के कालीन खरीदना बंद कर दें लेकिन अगर इस निर्यात पर पाबंदी लगा दी जाती है तो इससे बाल मजदूरों की समस्या हल होने वाली नहीं है क्योंकि किसी और देश में बच्चों को मजदूरी पर लगाकर यह काम होने लगेगा। इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि दूसरे देश में बच्चों का कम शोषण होगा। भारत में अन्य देशों के मुकाबले खुलापन अधिक होने की वजह से शोषण का मुद्दा सामने आ जाता है जबकि अन्य देशों में इस तरह की घटनाओं का पता तक नहीं लगता। इस बात की पूरी संभावना है कि दुनिया के एक भाग में बाल-मजदूरों के शोषण पर आधारित निर्यात पर रोक लगाने से दूसरे किसी भाग में बच्चों का शोषण होने लगे। यह भी संभव है कि वहां शोषण पहले भाग से भी ज्यादा और व्यापक स्तर पर शुरू हो जाए।

इसलिए यह सोचना गलत है कि बाल-श्रम को रोकने की लड़ाई पश्चिमी देशों में ही लड़ी जा सकती है। दरअसल इस युद्ध का असली मैदान तो वे देश हैं जहां गरीबी और शोषण विद्यमान है। इन देशों में निचले स्तर पर बच्चों से मजदूरी कराने की प्रथा पर रोक लगाने की जरूरत है। इसके अलावा बाल-श्रम पर रोक लगाने का और कोई रास्ता नहीं है।

अनुवाद : राजेन्द्र उपाध्याय
डी-1/65 लोधी रोड
नई दिल्ली-110003

लेखकों के लिए

रचना और अन्य प्रकाशनार्थ सामग्री भेजने वालों से अनुरोध है कि रचना भेजते समय वे कृपया इन बातों का ध्यान रखें:—

रचना संक्षिप्त एवं उसकी प्रस्तुति रोचक होनी चाहिए। इसमें उपलब्ध करायी गयी जानकारी अप्रकाशित और प्रमाणित होनी चाहिए।

रचना दो प्रतियों में डबल स्पेस में टाइप की हुई हो जो सात-आठ पृष्ठों से अधिक की नहीं होनी चाहिए। विषय प्रतिपादन में उपशीर्षकों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

रचना के साथ ब्लैक एंड व्हाइट फोटो भी आमंत्रित हैं।

बाल श्रम : समस्या और समाधान

नीलम गुप्ता

रौलट आयोग ने करीब 42 साल पहले कहा था कि 'बाल श्रम भारतीय श्रम व्यवस्था पर एक काला धब्बा है।' आजादी के चार दशक पूरे हो जाने के बाद भी हम इस धब्बे को मिटाना तो दूर हल्का तक नहीं कर पाएं हैं। उल्टा हालात दिन ब दिन बिगड़ ही रहे हैं। भारत के संविधान में बच्चों के संपूर्ण विकास के लिए राज्यों को विशेष व्यवस्था करने के अधिकार दिए गए हैं। बाल राष्ट्रीय नीति के तहत सरकार ने बच्चों का जन्म से पहले और जन्म के बाद स्वस्थ शारीरिक और मानसिक विकास का संकल्प लिया है लेकिन स्थितियों में बदलाव कहीं आस-पास दिखाई नहीं दे रहा।

असल में बाल श्रम भारतीय सामाजिक ढांचें, मानसिकता और अर्थव्यवस्था से निकली ऐसी समस्या है जिसका हल सिर्फ कानूनों और थोड़े-से स्वयं सेवी संस्थाओं की कोशिशों से नहीं निकल सकता। इसके लिए तो निरंतर सामूहिक कोशिशों और कड़े रवैए की जरूरत है।

बाल श्रम मुख्य रूप से दो प्रकार का होता है। एक, बच्चा घर में मां और बाहर अपने पारिवारिक धंधे में बड़ों का हाथ बंटाता हुआ काम सीखता चला जाता है। और दूसरा जिसमें बच्चे को मजबूरी में ऐसे काम पर लगाया जाता है जिससे पारिवारिक आमदनी बढ़े। इसमें बच्चे के शारीरिक, मानसिक विकास और स्वस्थ मनोरंजन पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। न मां-बाप की ओर से, न काम लेने वाले की ओर से। बाल मजदूरी असल में यही है, क्योंकि पहले श्रम में बच्चे से काम का मकसद आय बढ़ाना नहीं होता बल्कि उसे काम सिखाना होता है। यह काम उसकी पढ़ाई, मनोरंजन, खेल-कूद के बाद के समय में लिया जाता है और अंततः उसके विकास में सहायक होता है।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार अपने शारीरिक-मानसिक विकास को क्षति पहुंचाकर वयस्कों के बराबर ही काम करने और वयस्कों के सामन ही जिंदगी बिताने को बाल श्रम कहा जा सकता है। कई बार इसमें बच्चों को परिवार से अलग भी कर दिया जाता है। उन्हें भविष्य के बेहतर अवसर न देने के साथ ही शिक्षा और प्रशिक्षण की सुविधाओं से भी वंचित रखा जाता है।

कितने बच्चे मजदूर

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की बाल श्रम की इस सर्वमान्य परिभाषा के अनुसार भारत में इस समय करीब डेढ़ करोड़ बच्चे बाल मजदूर का जीवन जी रहे हैं। 1971 की जनगणना के अनुसार देश में एक करोड़ 70 लाख 40 हजार बच्चे बाल मजदूर थे। यह उस समय की कुल बाल जनसंख्या का 4.66 प्रतिशत है। 1981 में यह संख्या घटकर एक करोड़ तीस लाख रह गई थी। इनमें से एक करोड़ दस लाख दो हजार मुख्य मजदूर और बीस लाख चालीस हजार सीमांत मजदूर थे। 1983 में योजना आयोग ने बाल मजदूरों की संख्या एक करोड़ सत्तर लाख 36 हजार बताई थी। 1986 में श्रम मंत्रालय के एक अध्ययन के अनुसार देश में 5 से 14 साल के बच्चों की कुल संख्या 18 करोड़ 32 लाख थी। इनमें से इस आयु के मजदूर बच्चों की संख्या एक करोड़ 66 लाख थी। 0-5 साल के मजदूरों की संख्या इससे अलग है। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि देश के 14 साल तक के करीब 12 से 15 फीसदी बच्चे अपना पढ़ना-लिखना-खेलना छोड़कर कठोर श्रम की दुनिया में अपने को खपाते हैं और जिंदगी भर एक खुशनसीब बच्चा होने की कल्पना करते हुए ही खत्म हो जाते हैं पर ये आंकड़े कुछ सर्वेक्षणों पर आधारित हैं। वास्तव में बाल मजदूरों की संख्या इससे कहीं ज्यादा है। यहां 14 साल तक का जिक्र इसलिए किया गया है कि राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर इस उम्र तक के बच्चे को ही बाल मजदूर माना गया है इसके बाद उसे युवक या वयस्क मान लिया जाता है।

बाल मजबूरी क्यों?

किसी भी देश में बाल श्रम का मुख्य कारण गरीबी माना गया है। सामान्य जीवन की आम जरूरतों को पूरा कर पाने वाले परिवार के बच्चे बाल श्रम की ऊपर दी गई परिभाषा के अनुसार मजदूरी करते नहीं देखे जाते। अपने तमाम सपनों को अपने भीतर दबाकर काम तो एक गरीब का बच्चा ही करता पाया जाता है। फिर वह काम चाहे घरेलू नौकर का हो, ढाबे पर चाय पिलाने का हो, सड़क किनारे पत्थर तोड़ने का या ईंट उठाने का हो, खेत में फसल काटने का हो या फिर किसी फैक्ट्री की भट्टी के सामने खड़े होने का हो। हमारे देश में करीब 32

करोड़ 80 लाख व्यक्ति गरीबी की रेखा से नीचे का जीवन जी रहे हैं यानि कुल जनसंख्या का चालीस प्रतिशत। गरीबी आदमी की मजबूरी तो है ही इसका अर्थ अशिक्षा, अज्ञानता और अन्याय को सहने की शक्ति भी है। बाल श्रम के साथ में सभी बातें जुड़ी हुई हैं।

बाल श्रम का दूसरा बड़ा कारण बेरोजगारी है। योजना आयोग के अनुसार देश में करीब डेढ़ करोड़ लोग बेरोजगार हैं। असल में मूलभूत विकास की गति काफी धीमी होने के कारण रोजगार के अवसर ज्यादा नहीं बढ़ पाए। पहले से चले आ रहे असंतुलित भूमि विकास और शहरों में औद्योगिक विकास के कारण गांवों से शहरों में पलायन हुआ और वहां रोजमर्रा की जरूरतें पूरी करने के लिए बड़ों के साथ-साथ बच्चों को भी काम पर जाना पड़ा। कई परिवारों में तो बड़ों के मुकाबले बच्चों के रोजगार दिन ज्यादा होते हैं, कारण बच्चों को उतने ही काम के लिए कम मजदूरी पर रख लिया जाता है। इसलिए बेरोजगारी के साथ-साथ मूलभूत विकास की धीमी गति और बच्चों को कम वेतन देकर ज्यादा काम लेने की मानसिकता ने भी बाल श्रम को बढ़ावा दिया है।

बाल श्रम को नियमित करने के लिए बनाए गए विभिन्न कानून, नियमों को लागू करने में सरकार अगर पूरी तरह नहीं तो काफी हद तक नाकाम रही है। इसका मुख्य कारण तो कानूनों में ही कोई-न-कोई खामी होना और दूसरा उन्हें कड़ाई से लागू न कर पाना है।

इन सबके अलावा कामगार परिवारों की 'जितने हाथ उतने काम' वाली मानसिकता ने भी बाल श्रम को बढ़ावा दिया है। चंडीगढ़ में प्लास्टिक आफ पेरिस की मूर्तियां बनाने वालों की बस्ती के प्रधान के नौ बच्चे थे। सबसे छोटा बच्चा तीन महीने का था। उसकी मासिक आय इतनी थी कि चाहता तो कम-से-कम दो-तीन बच्चों को स्कूल भेज सकता था, लेकिन नहीं। उसका तर्क था 'बच्चे स्कूल जाएंगे तो मसाला, मिट्टी पकड़ाने, पानी लाने का काम कौन करेगा। ये बच्चे मूर्तियां बनाना, बेचना और पैसा गिन लेना जानते हैं। हमारे लिए यही काफी है।' 25 परिवारों की उस बस्ती में से एक भी बच्चा स्कूल नहीं जाता था। असल में बच्चों के प्रति हमारी यह मानसिकता बेहद घातक है और विकास की गति को पीछे ले जाती है। कई संपन्न परिवारों तक में यह मानसिकता पाई जाती है। कामगार परिवार की इस मानसिकता के साथ-साथ कामगार बच्चे के प्रति सामाजिक मानसिकता ने भी बाल श्रम को बढ़ावा ही दिया है। ख्वाजा अहमद अब्बास की कहानी 'पराई फांस' को पढ़कर हम थोड़ी देर के लिए विचलित भले ही हो लें, ढाबों, दफ्तरों में चाय इन्हीं बच्चों के हाथ से पीएंगे।

गंभीर स्थितियां

यूं तो समाज का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जहां बच्चों से मजदूरी न ली जाती हो पर सरकारी भाषा में हम इसे संगठित और असंगठित दो क्षेत्रों में विभाजित करते हैं। असंगठित क्षेत्र में बाल मजदूरों की पूरी फौज आती है जो घरेलू नौकर, होटल, दर्जी, जूता-पालिश, सफाई, सामान उठाई-धराई, निर्माण कार्यों, खेती आदि में सहायक के रूप में काम करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में खेती के काम में बच्चा उस बड़े व्यक्ति का विकल्प है जो काम की तलाश में शहर चला गया है। संगठित क्षेत्र में ज्यादातर उद्योग आ जाते हैं। बाल श्रम समिति (1979) के अनुसार भारत में मुख्य रूप से बाल श्रम के 17 क्षेत्र हैं। ये क्षेत्र इस प्रकार हैं—खेती, बागान, खदान एवं खनन, बीड़ी, कांच चूड़ी उद्योग, हथकरघा एवं कालीन बुनाई, जरी व कशीदाकारी, रत्न कटाई और चमक चढ़ाई, दियासलाई और पटाखा, मशीन औजार सुधारने की दुकान, पैट्रोल पंप, काजू और जूट उत्पाद, घरेलू कामगार, कैंटीन, होटल, ढाबे, दुकानें, कूड़ा बिनाई, भवन निर्माण, हॉकर, फेरी वाले, अखबार बेचने वाले, कुली आदि।

ये सभी क्षेत्र आम जानकारी के और सर्वमान्य क्षेत्र हैं। इनके आलावा भी बच्चों के श्रम का इस्तेमाल कई व्यवसायों में किया जाता है। इनमें नशीले पदार्थों की तस्करी और बिक्री आदि शामिल हैं।

शोषण

इनमें से शायद ही कोई धंधा होगा जिसमें मालिक बच्चे का शोषण न करता हो। यह शोषण कई प्रकार से किया जाता है जैसे कम मजदूरी और अधिक काम, जोखिम भरे काम जिनका बच्चों के शरीर और मन पर बेहद खराब असर पड़ता है। असुरक्षित वातावरण और काम की प्रकृति के मुताबिक जरूरी उपकरण या सहूलियतें मुहैया न कराना।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के मुताबिक बच्चों से हफ्ते में छह दिन और साढ़े चार घंटे से ज्यादा काम नहीं लिया जा सकता। बाल श्रम संबंधी दूसरे नियमों के मुताबिक उनसे शाम को सात बजे से सुबह सात बजे तक काम नहीं लिया जा सकता। लेकिन इन नियमों का पालन शायद ही कहीं होता है। बच्चों से 6 से 8 घंटे काम लेना आम बात है। कहीं-कहीं यह समय 11 से 15 घंटे तक भी हो जाता है। दियासलाई, पटाखे बनाने और कांच जैसे उद्योगों में रात को भी काम लिया जाता है पर शोषण यही नहीं है इनसे ऐसी-ऐसी जगहों पर काम लिया जाता है कि उससे बच्चों के शरीर और मन पर काफी बुरा असर पड़ता है। मुर्शिदाबाद में किए गए एक सर्वेक्षण के

अनुसार बहुत कम जगह में एक खास तरीके से बैठकर ज्यादा देर तक बीड़ी बनाने से बच्चों के फेफड़े कमजोर हो जाते हैं और उन्हें क्षय रोग हो जाता है। हथकरघा-कालीन बुनाई उद्योग में कारीगर के इशारे पर बच्चे बड़ी-बड़ी मशीनों के पीछे से ऊन, सूत आदि बटोरते हैं। कपास के रोंए और उनके रेशों के कारण हवा भारी हो जाती है। इससे बच्चे बहुत जल्द दमे जैसी बीमारियों का शिकार हो जाते हैं। कालीन बनाते समय उन्हें खास तरह से बैठना पड़ता है। इससे उनके शारीरिक विकास पर असर पड़ता है और आंखें बहुत जल्द कमजोर हो जाती हैं। फिरोजाबाद के कांच उद्योग में पिघला कांच ढोने के लिए बच्चों को भट्टी के पास ही खड़े रहना पड़ता है। भट्टी का तापमान 1300 डिग्री सेल्सियस रहता है। आठ घंटे की पाली में एक बच्चा कम-से-कम तीन सौ बार भट्टी के पास जाता है। चूड़ी बीनते हुए खरोंचें, चोटें लगना आम बात है। इससे टिटनेस, चर्मरोग होने का डर रहता है। जयपुर की रत्न कटाई से आंखें खराब हो जाती हैं, पर अंत यहीं नहीं है, बच्चों को मारना-पीटना, कमरों में बंद कर देना, छड़ों से दागना, उल्टा लटका देना आदि आम बात है। यह सब करते हुए कई बार तो बच्चे की मौत भी हो जाती है लेकिन आगे सिलसिला जारी रहता है।

विडम्बना यह है कि इतने अत्याचारों और वयस्कों के बराबर काम करने पर भी मालिक बच्चों को पूरी तनख्वाह नहीं देते। शुरू में तो काफी समय तक बिना पैसे के ही काम लिया जाता है और बाद में जो मजदूरी दी जाती है वह भी आधी। असल में बच्चों को इतनी बड़ी संख्या में रखा ही इसलिए जाता है कि पूरा काम लेकर भी उन्हें कम पैसे देने पड़ते हैं। इस दृष्टि से न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 पूरी तरह विफल रहा है।

बाल श्रम संबंधी कानून और उनका क्रियान्वयन

बाल मजदूरी का धब्बा धोने के लिए सरकार ने कोशिश न की हो ऐसी बात नहीं लेकिन वह खुद भी मानती है कि यह कोशिश कानूनी ज्यादा और व्यावहारिक कम रही है। दूसरा उसने मान लिया है कि गरीबी के रहते देश से बाल मजदूरी को खत्म नहीं किया जा सकता। इसलिए उसने इसे कुछ क्षेत्रों में मंजूरी देते हुए समुचित नियंत्रण लगा दिए हैं। यह काम बाल श्रम (उन्मूलन व नियमन) अधिनियम, 1986 के जरिए किया गया है। इससे पहले करीब 11 अधिनियम थे। जिनमें बाल श्रम को नियंत्रित अधिनियमित किया गया है। इनमें से दो कानून तो आजादी से पहले 1933 और 1938 में बने। ये क्रमशः हैं बाल (बंधुआ श्रम) अधिनियम और बाल रोजगार अधिनियम। पहले में बंधुआ मजदूरी पर रोक लगाई गई थी और दूसरे में कुछ खास उद्योगों और क्षेत्रों जैसे—बंदरगाह, बीड़ी बनाना, कालीन, सीमेंट, कपड़ा छपाई-रंगाई, दियासलाई बनाना, अभ्रक काटना, चमड़ा रंगाई, ऊन सफाई आदि में 14 साल से कम उम्र के बच्चों को काम पर लेना गैर कानूनी कर दिया गया है। लेकिन 57 साल बाद आज भी देश के करीब 57 हजार बंधुआ बाल मजदूर हैं और 52 साल बाद भी तमाम निषिद्ध क्षेत्रों में काम हो रहा है। 1948 में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम और फैक्ट्री अधिनियम बने। इनमें बच्चों की आयु 15 साल तक मानी गई और साथ ही बच्चों और बड़ों के वेतन की विभिन्न दरें तय करने की अनुमति दे दी गई। इसके बाद विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत बच्चों के लिए समय-समय पर कई कानून बने जैसे बागान श्रम अधिनियम 1951, खदान अधिनियम 1952, व्यापारिक जहाजरानी अधिनियम 1961, प्रशिक्षणार्थी अधिनियम 1961, आणविक ऊर्जा अधिनियम 1962, बीड़ी एवं सिगार (रोजगार शर्तें) अधिनियम 1966 और दुकान एवं संस्थान अधिनियम। लेकिन इनमें से कोई भी कानून भारत के बच्चों को संविधान से मिले उनके अधिकार नहीं दिला सका।

भारतीय संविधान की धारा 15(3) में राज्य को बच्चों के लिए विशेष व्यवस्था का अधिकार दिया गया है। राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के तहत धारा 39(ई) में भी बच्चों के उज्ज्वल भविष्य के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं। केन्द्र और विभिन्न राज्य सरकारों ने उन्हें कानूनी जामा तो पहनाया पर व्यवहार में स्थिति सुधारने की बजाए बिगड़ती ही चली गई। सरकार ने समय-समय पर कई अध्ययन भी कराए और उनकी रिपोर्टों के आधार पर मौजूदा कानूनों में कमोबेश संशोधन भी किए मगर बात नहीं बनी। 1974 में सरकार ने बाल श्रम पर राष्ट्रीय नीति बनाई। इसमें पहली बार यह माना गया कि बच्चों का पूरी तरह शारीरिक, मानसिक और सामाजिक विकास सुनिश्चित करने के लिए उन्हें जन्म से पहले और जन्म के बाद और उनकी विकास अवधि के दौरान पर्याप्त सेवाएं उपलब्ध कराई जाएं। सरकार इन सेवाओं में उत्तरोत्तर वृद्धि करेगी ताकि उपयुक्त समय में देश के सभी बच्चों को उनके संतुलित विकास के अवसर मिल सकें। इस लक्ष्य को पाने के लिए करीब 15 उपायों की व्यवस्था की गई जिसमें एक यह भी था कि बच्चों को उपेक्षा, अत्याचार और शोषण से बचाया जाएगा। दूसरी ओर 14 साल से छोटे बच्चों को किसी भी खतरनाक धंधे में नहीं लगाया जाएगा और न ही उससे भारी काम लिया जाएगा।

इस नीति से साफ था कि सरकार देश से बाल श्रम को खत्म करना चाहती है। उसकी नीयत में शक की गुंजाइश नहीं थी

पर आइने का अक्स बदल नहीं रहा था। फरवरी 1979 में केन्द्रीय श्रम मंत्रालय ने एम. एस. गुरुपदस्वामी की अध्यक्षता में कमेटी बिठाई। दिसम्बर में इसने अपनी रिपोर्ट दे दी। कमेटी ने बाल श्रम उन्मूलन और रोजगार नियमन के लिए प्रचलित कानूनों को एक व्यापक विधेयक में तब्दील करने का सुझाव दिया। साथ ही कहा कि विधेयक में बाल तथा किशोर की सर्वमान्य परिभाषा, काम की शर्तें और समय को तय किया जाए। उसमें इतना लचीलापन भी हो कि वह रोजगार के लिए नए क्षेत्रों को समेट सकें। इन सबके अलावा समिति ने कामगार बच्चों के लिए पोषण, स्वास्थ्य सुरक्षा जैसे सहयोगी तत्वों पर भी जोर दिया। इन सुझावों पर नवम्बर 1983 में सनत मेहता के नेतृत्व में बैठी श्रम मंत्रियों की कमेटी में विचार किया गया। लेकिन इसके सुझावों और गुरुपदस्वामी कमेटी के विचारों में काफी अंतर था। इसी बीच बंगलूर स्थित द कंसर्ड फार वर्किंग चिल्ड्रन नाम की स्वयंसेवी संस्था ने अपनी पहल पर एक बिल का प्रारूप तैयार कर प्रधानमंत्री को दिया। उसका नाम था—बाल श्रम नियमन, प्रशिक्षण और विकास बिल, 1985, अंततः इस मसौदे और पिछली दोनों कमेटियों की सिफारिशों के आधार पर सरकार 1986 में बाल श्रम (उन्मूलन और नियमन) अधिनियम लाई। माना गया था कि काफी सोच-विचार के बाद लाया गया वह बिल एक हद तक मालिकों को बाल श्रम संबंधी कानूनों का पालन करने पर बाध्य करेगा। लेकिन हालात बताते हैं कि बात फिर वही ढाक के तीन पात ही है।

बंधुआ मुक्ति मोर्चे के अध्यक्ष स्वामी अग्निवेश जो दलित बच्चों की मुक्ति का भी काम कर रहे हैं का कहना था— वह कानून अपने आप में ठीक है। सवाल वही क्रियान्वयन का है।

यह सच है (सरकार भी मानती है) कि कामगार बच्चों के हितों की रक्षा के लिए ज्यादा काम स्वयंसेवी संस्थाओं ने ही किया है। इसके लिए उन्होंने राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनों मंचों का खुलकर इस्तेमाल किया है। अभी तक कोशिश मालिक से बच्चों को पूरी तनख्वाह दिलाने, बच्चों या उनके माता-पिता को संगठित करने, उन्हें शिक्षित करने आदि तक ही रहती थी। किसी ने बच्चों द्वारा बनाए जा रहे माल का उपभोग करने वाले उपभोक्ताओं को इस बारे में जाग्रत करने की नहीं सोची थी। बंधुआ मुक्ति मोर्चा ने विदेशों खासकर पश्चिमी जर्मनी में, फिरोजाबाद के कालीन के खिलाफ इस आधार पर जनमत जाग्रत किया कि दुनिया को ये खूबसूरत कालीन बच्चों का शोषण कर बनाए जाते हैं। अब वहां लोग वही कालीन लेते हैं जिस पर बाल मजदूरों द्वारा नहीं का लेबल लगा होता है पर यह तरीका अभी बाहर ही प्रयोग किया गया है। जरूरत है अब देश के भीतर भी उपभोक्ताओं को बाल श्रम के खिलाफ जाग्रत और संगठित करने की।

बाल श्रम सेल और सुझाव

जहां तक कानून की बात है, उसे लागू करवाने में भी स्वय सेवी संस्थाएं ही ज्यादा कारगर साबित हुई हैं। इसीलिए कामगार बच्चों के हितों की रक्षा और इन संस्थाओं के साथ समन्वय के लिए श्रम विभाग में एक बाल श्रम सेल की स्थापना की गई है। विभिन्न योजनाओं को लागू करने के लिए संस्थाओं को पैसा यही सेल देता है पर पैसा देना ही काफी नहीं है। ज्यादा जरूरी है कि सरकार न्यूनतम मजदूरी जैसे कानूनों को कड़ाई से लागू करें। जब मालिक को बड़ों के बराबर ही बच्चे को भी उसके काम के पैसे देने पड़ेंगे तो वह बच्चों को काम पर नहीं लेगा तो परिवारों में अभी तक चली आ रही यह मनोवृत्ति कि 'जितने हाथ उतने काम' घटेगी। लोग बड़े परिवार से घबराएंगे इससे एक ओर परिवार विभाजन की समस्या हल होगी दूसरी ओर बेरोजगारी की। पूरी तनख्वाह के बदले मालिक बड़े लड़कों को रोजगार देंगे। इस समय कम-से-कम दो करोड़ बच्चे मजदूरी कर रहे हैं। संगठित क्षेत्र में इनकी संख्या अगर 60-70 लाख भी मान ली जाए तो भी बेरोजगारी की समस्या का आंशिक हल तो होगा ही।

कामगार बच्चों का एक बहुत बड़ा भाग कचरा बीनने के धंधे में है। कच्ची बस्तियों में काम करने वाली स्वयंसेवी और सरकारी संस्थाएं अगर चाहें तो इन बच्चों या उनकी मांओं के नाम पर पैसे बैंक में जमा करवाने की कोई व्यवस्था करा सकती हैं।

सरकार को शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी सुविधाओं आदि का विस्तार तो करना ही है साथ ही गरीबी दूर करने के लिए आधारभूत विकास कार्यों को भी बढ़ावा देना होगा। आठवीं पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण धंधों को सहकारिता क्षेत्र में लाने की जो बात कही गई है, उससे भी बाल मजदूरों का शोषण घटेगा। इन सबके साथ ही जरूरी है कि सरकार दूरदर्शन जैसे माध्यम पर विज्ञापनों के जरिए बाल श्रम संबंधी कानूनों की जानकारी जनता को दे।

इन सबके अलावा, सरकार अगर वास्तव में ही बच्चों संबंधी राष्ट्रीय नीति को सच होते देखना चाहती है तो उसे संगठित और असंगठित दोनों क्षेत्रों में पालनाघरों की व्यवस्था करनी होगी। आंगनवाड़ी कार्यक्रम उनके लिए काफी नहीं है।

11-डी-2, हिन्दुस्तान टाइम्स अपार्टमेंट्स
मयूर विहार I, दिल्ली-110092

शोषण और अन्याय की चक्की में पिसते कामकाजी बच्चे

सुभाष चन्द्र 'सत्य'

बचपन मनुष्य-जीवन की आधारभूत और कोमलतम अवस्था है। यह अवस्था निर्माण एवं संस्कार की होती है। बचपन में व्यक्ति को ग्रहण करना होता है तथा प्रदान करने की स्थिति बाद में आती है। मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास में बचपन में उसे वातावरण प्राप्त संस्कारों एवं परिस्थितियों का सबसे अधिक योगदान रहता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए सभ्यता के विकास के साथ-साथ बच्चों को संस्कारित करने पर ध्यान दिया जाने लगा। प्राचीन तथा मध्यकाल में हमारे देश में गुरुकुलों तथा आश्रमों के माध्यम से बच्चों को संस्कार श्रम एवं भावी व्यवसाय के लिए तैयार करने की व्यवस्था विद्यमान थी परन्तु उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर यही कहा जा सकता है कि यह व्यवस्था समाज के उच्च वर्गों तक ही सीमित थी। धीरे-धीरे यह सीमित व्यवस्था भी दुर्बल होती गई। आधुनिक काल में स्कूल व्यवस्था के प्रचलन से बच्चों को शिक्षित एवं प्रशिक्षित करने की दिशा में प्रयास आजादी से पहले ही प्रारम्भ हो गए थे किन्तु हमारे देश के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन के कुछ दोषपूर्ण पहलुओं के कारण आज भी करोड़ों बच्चे बचपन में प्रौढ़ों जैसे जीवन बिताने को अभिशप्त हैं। हम यहां इस स्थिति के कारणों का नहीं किन्तु उस कठोर एवं शोषित जीवन पर प्रकाश डाल रहे हैं, जिसने बच्चों के बाल सुलभ कोमलता और सरलता को सदा-सदा के लिए छीन लिया है।

कोमल कंधे भारी बोझ

खाते-पीते घरों का कोई बच्चा जब स्कूल से देर से घर लौटता है अथवा ब्लेड-पत्थर आदि लगने से उसका खून बहने लगता है तो मां-बाप का दिल रो आता है किन्तु क्या हमें मालूम है कि भारत की राजधानी दिल्ली में ही लगभग 5 लाख बच्चे जिनमें लड़के व लड़कियां दोनों शामिल हैं, दिन भर कचरा बीन कर अपना पेट भरते हैं और मां-बाप की भी मदद करते हैं? लगभग एक लाख बच्चे ऐसे हैं जो अपने घरों के सुख तथा मां-बाप के प्यार-दुलार से वंचित रह कर 8-10 साल की उम्र में ही दूसरों के घरों में काम करने लगते हैं। लड़कियों की स्थिति अधिक शोचनीय है क्योंकि परम्परा के अनुसार उन्हें घर भी संभालना पड़ता है और दो पैसे कमाने के बाहरी काम भी करने पड़ते हैं। शहरों एवं कस्बों में भवन निर्माण, ढाबा, होटल, फैक्टरियां, दुकानों, गैरजों आदि में नियमित अथवा अनियमित रूप से काम करने के अलावा बच्चे बूट पालिश, कारें-स्कूटर साफ करना, कुलीगिरी, कचरा बिनाई, अखबार बेचना, रिक्शा चलाना, बाबूओं तथा बच्चों का खाना पहुंचाना आदि कामों में भी लगे हुए हैं। कोमल शरीर से इतने कठोर कार्य करने के कारण बच्चों का शारीरिक विकास तो रुकता ही है, कच्ची उम्र में बाहर के बड़े लोगों के साथ रहने के कारण उनमें कई प्रकार के चारित्रिक विकार भी पैदा हो जाते हैं तथा बहुत-से बच्चे अपराध जगत के गर्त में जा गिरते हैं। इसके अलावा बच्चों के श्रम का उचित मुआवजा नहीं दिया जाता तथा उनका खूब शोषण किया जाता है।

यहां यह ध्यान देने की बात है कि सरकारी संस्थानों तथा बड़े प्रतिष्ठानों में बाल श्रम विरोधी कानूनों के कारण बच्चों को काम पर नहीं रखा जाता, इसलिए कामकाजी बच्चों का बहुत बड़ा प्रतिशत असंगठित क्षेत्र में काम करता है। कामकाजी बच्चों की 80 प्रतिशत संख्या ग्रामीण क्षेत्रों में है। खेती तथा अन्य संबंधित गतिविधियों में 86.4 प्रतिशत बच्चे काम करते हैं। इसका कारण भी यही है कि बच्चे से काम दुगना लिया जाता है किन्तु उसे मजदूरी एक वयस्क की तुलना में आधी दी जाती है। इसके अलावा बहुत-से बच्चे पुश्तैनी तौर पर बंधुआ मजदूरी भी करते हैं।

बचपन में श्रम करना और वह भी अपने स्वाभाविक विकास की सुविधाओं से पूर्णरूपेण वंचित रहकर परिवार के लिए श्रम करना भी अपने आप में अभिशाप है, किन्तु दुर्भाग्य की चरम-सीमा यह है कि हमारे देश में बच्चों को अनेक खतरनाक धंधों में भी लोग अपने स्वार्थ सिद्धि तथा कम मूल्य में अधिक काम कर सकने के उद्देश्य से लगाते हैं। इन खतरनाक उद्योगों में काम करने के कारण उनकी शारीरिक क्षमताएं बहुत जल्दी समाप्त हो जाती है और विभिन्न रोगों तथा अन्य विकारों का शिकार होकर वे समय से पहले ही अपने जीवन से हाथ धो बैठते हैं।

दियासलाई और पटाखा उद्योग

दीवाली तथा खुशी के अन्य मौकों पर छोटे-छोटे बच्चे तालियां बजाकर और नाच-कूद कर जिस आतिशबाजी का आनन्द उठाते हैं, उसके निर्माण में उन्हीं जैसे असंख्य बच्चों का जीवन स्वाह हो जाता है, जो पटाखे और फुलझड़ियां बना तो सकते हैं पर उन्हें चला नहीं सकते। तमिलनाडु में शिवकाशी पटाखों तथा दियासलाई उद्योग का प्रमुख केन्द्र है। इस उद्योग में लगभग 50,000 बच्चे लगे हैं। संभवतः यह एकमात्र उद्योग है, जिसमें कुल कार्यशक्ति की करीब 55 प्रतिशत संख्या बच्चों की है और इनमे भी 20 प्रतिशत बच्चे तो दो से पांच वर्ष के हैं। इन कारखानों में विषैले, ज्वलनशील तथा स्वास्थ के लिए हानिकारक रसायनों का इस्तेमाल होता है, किन्तु बच्चों के स्वास्थ्य की जांच और उपचार आदि की कोई व्यवस्था नहीं है। इस कारखानों में आए दिन दुर्घटनाएं होना स्वाभाविक है, इसलिए इनमें फैक्टरी कानून के अंतर्गत कई तरह की सावधानियां बरतने का प्रावधान है, किन्तु 70 प्रतिशत कारखाने गैर-पंजीकृत हैं, इसलिए इन प्रावधानों को ताक पर रख दिया जाता है। दुर्घटना की स्थिति में कोई मुआवजा या चिकित्सा सहायता नहीं दी जाती। ये बच्चे बड़े सवेरे ही उठकर फैक्टरी के लिए चल देते हैं तथा रात को देर से घर पहुंचते हैं।

इस प्रकार न वे अपनी शारीरिक आवश्यकताएं पूरी कर पाते हैं और न ही पारिवारिक आत्मीयता तथा स्नेह उन्हें मिल पाता है अतः शारीरिक तथा मानसिक दुर्बलता उनकी नियति बन गई है। रासायनिक पदार्थों का धुआं-दुर्गन्ध तथा हानिकारक प्रभाव इसलिए भी बच्चों को अपना शिकार बनाता है क्योंकि कारखानों में हवा-रोशनी आदि की भी उपयुक्त व्यवस्था नहीं है। 12-14 घंटे काम करके बच्चे केवल ढाई से 8 रुपये तक कमा पाते हैं, जबकि यहां लगी लगभग 6000 इकाइयों की सालना बचत 110 करोड़ रुपये से भी अधिक है। इस प्रकार शिवकाशी का पटाखा व माचिस उद्योग बच्चों के क्रूर शोषण की जीती-जागती मिसाल है।

कांच और चूड़ी उद्योग

ऐसा ही एक और उद्योग जिसमें बच्चों के जीवन से खुलकर खिलवाड़ हो रहा है, वह है उत्तर प्रदेश में फिरोजाबाद में कांच और चूड़ी उद्योग। फिरोजाबाद मे प्रतिदिन करीब 50 लाख रुपये की कांच की चूड़ियां, बर्तन, बल्व, सजावट के सामान का निर्माण होता है। यहां पर दो लाख मजदूर काम करते हैं जिनमें 50,000 बच्चे हैं। सात से बारह साल के ये बच्चे दिन भर या 12 घंटों की शिफ्ट के दौरान आग से खेलते रहते हैं। ये मासूम बच्चे गर्मी के दिनों में भी जब बाहर का तापमान 40 से 50 डिग्री सेल्शियस होता है भट्टी के नजदीक घंटों तक काम करते हैं। छड़ों के सिरे पर जलते हुए कच्चे शीशे पर काम करते हैं। इस प्रक्रिया में जलता हुआ शीशा उनके शरीर से केवल एक फुट दूर रह जाता है। वे जलते हुए शीशे को उठाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने का जोखिम भरा काम बराबर करते रहते हैं। इसके अलावा भट्टी के नजदीक पसीने से तर-बतर मजदूर ठोस शीशे को मुलायम करने के लिए इतनी जोर से फूंकते हैं कि लगता है कि उनका फेफड़ा अभी फट पड़ेगा। इस यातनापूर्ण कार्य के लिए मजदूरों को मात्र 16 रुपये दैनिक मिलते हैं। इस उद्योग में काम कर रहे बाल मजदूरों का शरीर हर वक्त दो या तीन तरफ से लाल गर्म शीशे से घिरा रहता है। उनके पैरों के नीचे शीशे के टुकड़ों की मोटी परत जमी रहती है।

मौलाना आजाद मेडिकल कालेज की डा. आशा सिंह ने कांच उद्योग का सर्वेक्षण करके बताया है कि प्रतिदिन औसतन 55 डिग्री सेल्शियस तापमान में काम करने से व्यक्ति को कैंसर भी हो सकता है। इस वातावरण में थकान, लगातार खांसी, विकलांगता, मांसपेशियों में जकड़न जैसी शिकायतें हो जाती हैं। इन बाल श्रमिकों के बच्चों में मानसिक विकलांगता की संभावना रहती है। फिरोजाबाद में क्षय रोग के मामले उत्तर प्रदेश में सबसे अधिक होते हैं। यहां बाल मृत्यु दर भी सबसे अधिक रही है।

मंदसौर का स्लेट उद्योग

मध्य प्रदेश में मंदसौर का स्लेट उद्योग बाल श्रमिकों का एक और यातनागृह है। स्लेट, पैंसिलें बनाने के लिए खान से प्राप्त स्लेटी पत्थरों की पतली परतों को काटकर छोटे-छोटे टुकड़े किए जाते हैं। इस प्रक्रिया में एक विशेष प्रकार की धूल निरंतर उड़ती रहती है। निरंतर आठ घंटे तक इस वातावरण में सांस लेते रहने से मजदूरों के फेफड़ों में धूल भर जाती है। इससे क्षयरोग के साथ साथ-साथ सिलिकोसिस एवं निमाकोनियोसिस नामक भयंकर रोग हो जाते हैं, जिनके कारण बच्चे असमय ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं क्योंकि इस उद्योग में काम करने वाले मजदूर बहुत जल्दी ही रोगी बनकर नकारा हो जाते हैं, इसलिए छोटे-छोटे बच्चों को इस संहारक उद्योग में अपने को झोंक देना पड़ता है। जो महिलाएं इस पत्थर की खानों में काम करती है, उनके छोटे बच्चे बाहर पड़े या घूमते रहते हैं, जिससे शैश्वावस्था में ही उनके भीतर धूल पहुंच जाती है। इस क्षेत्र में इस तरह के लगभग 600 पंजीकृत कारखाने हैं, जिनमें करीब 4,000 मजदूर काम करते हैं।

(शेष पृष्ठ 24 पर)

बुधुआ से बुधराम

कन्हैया लाल 'मत्त'

बुधुआ का गांव एक ऐसी जगह स्थित था जिसे पिछड़ा हुआ इलाका कहते हैं—निकट के कस्बे से लगभग दस किलोमीटर दूर। और तो और, निकट का रेलवे स्टेशन भी वहां से पांच किलोमीटर दूर था और सबसे नजदीक की पक्की सड़क भी, जिसे गांव वाले 'पक्का गोला' कहते थे, लगभग तीन किलोमीटर दूर पड़ती थी। सड़क तक पहुंचने के लिए मात्र एक कच्चा दगड़ा था, जो आगे सड़क (राजमार्ग) पार कर रेलवे स्टेशन तक पहुंचता था। यह दगड़ा साल में सिर्फ छः महीने यानी कार्तिक-अग्रहायण और फागुन से लेकर जेठ तक, खुला रहता था, बाकी छः महीने गर्मी व जाड़े की बरसातों में पानी-कीचड़ से भरा रहता था। गांव के पिछले छोर पर बुधुआ के बाप का घेर था जिसमें फूस के छप्पर पड़े, कच्ची मिट्टी से बने दो कमरे थे। आगे एक लम्बा ओसारा तथा बीच में मिट्टी की बनी एक चौपाल थी, जिस पर शाम के समय गांव के कुछ बड़े-बूढ़े हुक्के गुड़गुड़ाया और बतियाया करते थे। जब कभी गांव में कोई 'अल्हैया' आ जाता, तो इसी चौपाल पर बैठ कर आल्हा अलापी जाती और तब वहां इतनी भीड़ जुड़ जाती कि घेर में तिल रखने की भी जगह न बचती। बुधुआ के बाप के पास दो खेत थे, जिसमें रबी और खरीफ की फसलों से घर के गुजारे के लायक अनाज हो जाता था। बाकी दिनों में जो साग-सब्जी उगाते, उसे फालतू अनाज के साथ निकट के कस्बे में बेच देते और बेच कर जो रकम मिलती, उससे घर की जरूरत का अन्य सौदा-सुलफ खरीद लाते। साग-सब्जी की फसल इतनी भरी-पूरी होती थी कि उसकी बिक्री की रकम से उन्हें भविष्य के लिए भी कुछ बचाने का अवसर मिल जाता था, अतः किसी अड़े-भिड़े वक्त पर उन्हें किसी के आगे हाथ फैलाने की जरूरत ही नहीं होती थी।

परिवार में कुल मिलाकर छः प्राणी थे—बुधुआ के माता-पिता, एक भाई, एक बहन और एक बैल। असल में यह बैल ही उनके परिवार का महत्वपूर्ण सदस्य था, जो निकट के कच्चे कुएं से उनकी खेती को हरा-भरा रखता था। भाई, बुधुआ से पांच साल बड़ा और बहन तीन साल छोटी थी। बुधुआ के पिता ने अपने बड़े बेटे की पढ़ाई में अधिक रुचि देखकर पहले निकट के कस्बे में, फिर बाद में एक दूरस्थ नगर में भेजकर उसे अच्छी-से-अच्छी शिक्षा दिलाई। वहीं उसे अच्छी-सी नौकरी भी मिल गई और शादी के बाद वह वहीं रह कर नगरवासी हो गया और वहीं के वातावरण में रच-बस गया। नगर की संस्कृति और रहन-सहन के आकर्षण का उस पर इतना प्रभाव पड़ा कि उसने गांव जाना ही छोड़ दिया और इस प्रकार अपने परिवार से ही अलग-थलग पड़ गया। कभी गांव से कोई बुलाता या चिट्ठी-पत्री आती, तो वह बच्चों की पढ़ाई का, अथवा अपने दफ्तर से छुट्टी न मिलने का बहाना बनाकर टाल देता। पिता अपने बड़े बेटे के इस व्यवहार से निराश रहने लगे और धीरे-धीरे अन्दर ही अन्दर घुलते-घुलते उन्होंने एक दिन खाट पकड़ ली। बुधुआ भी अपने बड़े भाई के इस व्यवहार से दुखी रहता, परन्तु वह कर ही क्या सकता था? एक साहसी नवयुवक की भांति वह पिता की सेवा-सुश्रुषा करता रहता और अपनी माता व बहन को भी ढाढस बंधाता रहता। गांव के बड़े-बूढ़े जो देसी नुस्खे सुझाते वह उन्हें करता रहता, क्योंकि नगर में ले जाकर किसी बड़े अस्पताल में अपने पिता का इलाज कराना उसके काबू के बाहर था। उसने अपने बड़े भाई को भी चिट्ठी लिखी, परन्तु भाई के आने के पहले ही पिता परलोक सिधार गए। बड़े भाई को अपने जीवित पिता का मुख देखना नसीब न हुआ। पिता का क्रिया-कर्म करने के उपरान्त बड़ा भाई अपनी पत्नी-बच्चों को लेकर फिर अपने नगर की ओर लौट गया। अलबत्ता, इतना आश्वासन वह अवश्य दे गया कि मुझसे जो कुछ बनेगा वह मैं परिवार के लिए भेजता रहूंगा। उसने कब, क्या और कितना भेजा—यह केवल बुधुआ और परिवार के शेष प्राणियों के अतिरिक्त किसी को भी न मालूम हो सका।

बुधुआ के ऊपर तो मानो पहाड़ ही टूट पड़ा। अभी वह सत्रह-अठारह साल का ही तो था, परन्तु परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी तथा अपनी छोटी बहन के भविष्य की समस्या से उसने मुंह मोड़ना स्वीकार नहीं किया। ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए, त्यों-त्यों कोई अदृष्ट शक्ति उसमें साहस भरती गई। कम पढ़ा-लिखा होने पर भी उसमें सूझ-बूझ की कमी न थी और पिता की देख-रेख में खेत क्यार का काम करते रहने के कारण वह कठिन-से-कठिन परिश्रम करने का अभ्यस्त भी हो चला था। उसके सामने कठोर परिश्रम करने के अलावा और कोई चारा न था, अतः उसने उसी को अपना ध्येय बना लिया। उसने अपने दोनों खेतों की ओर स्नेह-भरी दृष्टि से देखा और पाया कि ये खेत ही उसके परिवार की डूबती नैया को

पार लगाएंगे। इधर, गांव में कृषि विभाग के कर्मचारी भी आने लगे थे, जो लोगों को उन्नत खेती के बारे में बताते और खाद-पानी तथा बीजों के प्रयोग की नई-नई वैज्ञानिक विधियों की सलाह देकर उन्हें समझाते कि किस प्रकार खेतों से अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। बुधुआ ने उनके बताए हुए मार्ग पर चल कर पहले अपने खेतों की मिट्टी की जांच कराई जिससे उसे पता चल सके कि उसके खेतों में किस प्रकार के बीज डालने से उसे अच्छी फसल मिल सकती है। उसने बीज-भण्डार से अच्छी किस्म के बीज खरीदे और खेत की क्यारियों में यथोचित दूरी पर उन्हें बोकर आवश्यकतानुसार खाद-पानी दे डाला। समय पर लहलहाती फसल देखकर उसकी खुशी का पारावार न रहा। दिन दूनी और रात चौगुनी होती हुई उसकी सम्पन्नता ने उसे इस योग्य बना दिया कि उसकी गिनती गांव के खाते-पीते लोगों में होने लगी। उसे यह भी विश्वास होने लगा कि वह अपनी छोटी बहन के हाथ पीले कर सकेगा। दूर-दूर से लोग अपनी बेटी का रिश्ता उसके साथ करने के लिए आने लगे, परन्तु उसने साफ-साफ कह दिया कि वह पहले अपनी बहन की शादी करेगा। सब कुछ ठीक चलने लगा था, परन्तु दुर्भाग्य का कोप अभी शान्त न हुआ था। उसकी वृद्धा माता को अपने पति के परलोक सिधार जाने का दुख उसके शरीर को अन्दर ही अन्दर खोखला करता रहा था और अन्त में वह भी जीर्ण-शीर्ण होती हुई मरणासन्न अवस्था को प्राप्त हो गई। बुधुआ ने भरसक अच्छे-से-अच्छा इलाज कराया, परन्तु वह बच न सकी। पहले की ही तरह, उसका बड़ा भाई अपनी माता के अन्तिम संस्कार में सम्मिलित हुआ और कुछ दिन गांव में रह कर अपनी पत्नी और बच्चों को लेकर फिर नगर को लौट गया।

बुधुआ के सिर पर मानो एक और पहाड़ टूट पड़ा। परिवार में अब सिर्फ वह और उसकी छोटी बहन रह गए। चिन्ता के कारण उसका भी शरीर ढीला पड़ने लगा, परन्तु उसकी बहन यह कह कर उसे निरन्तर ढाढस बंधाती रही कि 'भैया! तुम मुझे बहन न समझकर अपना छोटा भाई ही समझो। मैं भी तुम्हारे साथ खेत-क्यार के काम में लगूंगी और परमात्मा ने चाहा, तो ये निराशा और चिन्ता के बादल भी एक दिन छंट जाएंगे।' बहन के ये साहस-भरे वाक्य उसके दिल में गहरे उतर गए। उसने बहन को शाबासी दी और उसे खेती के बजाए घर के काम-काज में ही लगाए रख कर फिर नए उत्साह के साथ खेती के काम में जुट गया।

परिश्रम की तो महिमा ही निराली है, बड़े-से-बड़े कठिन काम भी सरल हो जाते हैं। बुधुआ के साथ भी यही हुआ। वह तन-मन से अपने काम में जुटा रहा और एक दिन वह भी आया जब उसने दो खेत और खरीद लिए। फिर दो के चार और चार के आठ—इस तरह बढ़ते-बढ़ते उसके पास एक दर्जन खेत हो गए। दो-चार खेतीहर मजदूरों को भी उसने काम पर लगा लिया। उसके प्रोत्साहन से गांव के अन्य युवकों को भी प्रेरणा मिली और वे भी खेती के काम के अलावा गांव के सामूहिक उत्थान के काम में लग गए। श्रम-दान की भी ऐसी परम्परा चली कि गांव के आस-पास के बेडौल गड्ढे, जो अनेक प्रकार के रोगों के जनक थे, भर दिए गए और उन पर खेत काट-काट कर खेती होने लगी। गांव का वह कच्चा दगड़ा जो छह महीने तक कीचड़ से भरा रहता था, अब सामूहिक श्रम-दान की कृपा से 'पक्के गोले' में बदल चुका था और अब उस पर बारहों महीने इक्के-दुक्के तांगे दौड़ने और बैल-गाड़ियां व भैंसा-बुग्गियां रड़कने लगीं थीं। रेलवे-स्टेशन तथा राजमार्ग भी अब दूर नहीं रह गए थे। मतलब यह कि गांव अब पिछड़ा गांव नहीं रह गया था। उनके खेतों की उपज दूर-दूर के नगरों में बिक कर गांव के प्रत्येक परिवार की आमदनी बढ़ाने लगी थी। शिक्षा का महत्व भी समझा जाने लगा था, जिसका परिणाम यह हुआ कि गांव में एक जूनियर हाई-स्कूल और एक छोटा-सा औषधालय भी स्थापित हो गया था। परन्तु यह सब हुआ गांव की पंचायत के माध्यम से जिसका प्रधान था स्वयं बुधुआ। पंचायत के सदस्यों ने एकमत से उसे प्रधान चुना था और अब वे उसे बुधुआ न कह कर 'बुधराम' पुकारने लगे थे।

कहावत है कि भाग्य साहसी व्यक्ति का साथ देता है और यह कथन अपने बुधराम के पक्ष में पूरी तरह चरितार्थ होता है। उसकी खेती का धन्धा अब इतना ऊंचा उठ गया था कि उसे अब ट्रैक्टर की आवश्यकता महसूस होने लगी। वह उसी नगर के एक बाजार में ट्रैक्टर खरीदने गया जहां उसका बड़ा भाई रहता था। बाजार में उसे बड़े भाई का लड़का अपने स्कूल की छुट्टी करके लौटता हुआ मिल गया। ट्रैक्टर खरीदने से पहले वह उसे अपने घर लिवा ले गया। बड़ा भाई उसे देख कर बहुत प्रसन्न हुआ।

बड़े भाई को पता चल चुका था कि उसका छोटा भाई अब बुधुआ न होकर बुधराम हो गया है, परन्तु बड़े भाई की हैसियत के लिहाज से तो वह उसके लिए अब भी बुधुआ ही था। हालांकि वह तीन-चार साल से गांव नहीं जा सका था, परन्तु गांव के लोग अक्सर उसे मिल जाया करते थे और वे उसे बुधुआ की लगन, साहस और श्रीवृद्धि के विषय में बता जाया करते थे। इतनी असहनीय उपेक्षा के बावजूद बुधुआ के मन में अपने बड़े भाई के प्रति कोई दुर्भावना पैदा नहीं हुई थी। उसने अपने भाई व भाभी के चरण छुए और पास पड़े हुए सौफे के एक किनारे पर बैठ गया और नगर में आने का अपना उद्देश्य उसे

बता दिया। बड़ा भाई उसकी इस उन्नति से प्रसन्न भी हुआ और कुछ चकित भी। उसे इस बात की प्रसन्नता थी कि जिसे वह पिता की जीवितावस्था में अल्हड़ व आलसी समझ रहा था, वह अब संघर्षों से तप-तप कर सोने जैसा निखर गया है, परन्तु इन संघर्षों की आग में उसे किसने धकेला? उन दुर्दिनों में किसने उसे सहायता देने के स्थान पर उसके साथ उपेक्षा बरती? ये प्रश्न उसे अन्दर कचोट तो रहे थे, परन्तु वह यह सोच कर भी अपने को सन्तोष दे रहा था कि यदि वह अपने इस अशिक्षित, अल्हड़ और लापरवाह भाई को पिता के परलोक-गमन के बाद, संघर्षों की आग से जूझने के लिए अकेला न छोड़ देता, तो आज यह तप कर सोना न बनता। असल में जिम्मेदारी के बोझ ने ही उसे एक जुझारू और उद्यमशील युवक बनाया है। भावावेश में उसने भाई को गले लगा लिया और बोला—"देखो बुधुआ, हमारे पिता दो खेत छोड़ गए थे, तुमने अपने परिश्रम से अब कई खेत खड़े कर लिए हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि तुम अकेले ही उस सारी जमीन के मालिक हो। ठीक है, तुमने अपने परिश्रम से उस सम्पत्ति में वृद्धि की है, लेकिन पैतृक सम्पत्ति में मेरा भी तो बराबर का साझा है। नफे में ही नहीं, नुकसान और लागत में भी मेरा बराबर का साझा है। उठो, ये लो रुपए और कम-से-कम दो ट्रैक्टर खरीद कर गांव चले जाओ और काम को आगे बढ़ाओ। मैं भी अगले हफ्ते गांव पहुंच रहा हूं। बहन की शादी के लिए मैंने जो रुपए बैंक में जमा किए हैं, उन्हें भी मैं अपने साथ लाऊंगा और तुम पहले बहन की शादी की व्यवस्था करो। सुपात्र लड़का तलाश में रखना और अगली गर्मी की छुट्टियों में तुम्हारी भाभी और भतीजे गांव में ही रहेंगे और तभी बहन की शादी भी ठाठ-बाट व धूम-धाम से कर देंगे। और सुनो, पिताजी ने जो कच्चा घेर हमारे लिए अपनी वसीयत के रूप में छोड़ा है, उसे भी पक्की आलीशान इमारत के रूप में खड़ा करना है। मैं जानता हूं कि मैंने एक कटु-धर्म का पालन किया है, परन्तु मेरा विश्वास अब भी मेरी भावना का समर्थन कर रहा है कि तुम्हें एक आदर्श युवक बनाने के लिए यह जरूरी भी था। अब तुम इस विश्वास के साथ गांव को लौटो कि मैं तुमसे अलग कभी नहीं था।"

बुधुआ नतमस्तक होकर खड़ा हो गया। उसकी आंखों में आंसू की बूंदें इस तरह झलझला रही थीं मानो उसके हृदय में दबा-छिपा भ्रातृत्व-स्नेह उमड़ कर अपने अस्तित्व को प्रमाणित कर रहा हो।

के. बी. 47, कवि नगर,
गाजियाबाद-201002 (उ. प्र.)

(पृष्ठ 21 का शेष)

स्लेट उद्योग के अभिशप्त मजदूरों का यह भी दुर्भाग्य है कि सिलिकोसिस रोग का कोई इलाज नहीं है और रोगी की मृत्यु अवश्यम्भावी है। इस क्षेत्र की महिलाओं में लगभग 25 प्रतिशत विधवाएं हैं, जिनके पति इसी प्रदूषण का शिकार होकर मृत्यु को प्राप्त हुए हैं।

इतने खतरनाक वातावरण में काम करने के बावजूद वहां के बाल श्रमिकों को मालिकों तथा ठेकेदारों के क्रूरता पूर्ण व्यवहार एवं शोषण का शिकार होना पड़ता है। शोषण ग्रस्त तथा निर्बल होने पर बच्चों को कोई मुआवजा देना तो दूर उन्हें काम से भी निकाल दिया जाता है।

इन प्रमुख खतरनाक उद्योगों के अलावा खदान, खनन, कालीन उद्योग, रत्न उद्योग, ताला उद्योग, बीड़ी उद्योग, इलैक्ट्रोलिटिंग ईंट, भट्ठा उद्योग, बागान आदि क्षेत्रों में भी बड़ी संख्या में छोटी उम्र के बच्चे बड़ी मशक्कत करते हैं तथा तरह-तरह के शोषण का शिकार होते हैं।

संविधान और कानून का उल्लंघन

ऐसा नहीं है कि हमारे संविधान, कानूनों तथा सरकारी नियमों में बाल श्रमिकों के इस शोषण को रोकने का कोई प्रावधान नहीं है। सच तो यह है कि मौलिक अधिकारों तथा राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों में खदानों तथा जोखिम भरे कामों में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को काम पर लगाने की रोक है। इसमें अनैतिक कार्यों के लिए बच्चों के इस्तेमाल पर भी रोक का प्रावधान है। इसके अलावा पिछले 100 वर्षों में बच्चों के रोजगार सम्बंधी शर्तों तथा परिस्थितियों के बारे में कई कानून बनाए गए हैं। बाल श्रमिकों के हितों की रक्षा के उद्देश्य से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कई घोषणाएं तथा समझौते भी हुए हैं, जिनका भारत ने समर्थन किया है। विभिन्न राज्य सरकारों ने भी अपने-अपने विशिष्ट उद्योगों तथा व्यवसायों के बाल श्रम के सम्बंध में अनेक कानून बनाए हैं। इनमें काम के घंटे, न्यूनतम-वेतन, काम के स्वरूप वेतन आदि के नियम तय किए गए हैं। किन्तु एक तो इन नियमों व कानूनों को लागू करने की ईमानदारी से कोशिश नहीं हुई और दूसरे कारखाना मालिकों, जमींदारों तथा व्यापारियों ने अधिक-से-अधिक लाभ कमाने, सरकारी भय के अभाव तथा मानव अधिकारों के प्रति उदासीनता के कारण इन कानूनों को विशेष महत्व नहीं दिया है। गरीबी, बेरोजगारी के दबाव तथा असंगठित रहने के कारण बाल श्रमिक इस शोषण का विरोध नहीं कर पाते। इसलिए बाल श्रमिकों की यह दुर्दशा जारी है किन्तु प्रश्न यह है कि हमारे अतीत के फल और भविष्य की आशा अर्थात निर्दयतापूर्ण शोषण के इस जाल से कब मुक्त हो सकेगा?

सी-7/134 ए, केशवपुरम, लारेंस रोड, दिल्ली-110035

गांधीजी का आर्थिक दर्शन

डा. ब्रजेशपति त्रिपाठी

गांधीजी का व्यक्तित्व बड़ा विराट था। उनके व्यक्तित्व में काफी विरोधाभास भी है जैसा कि प्रत्येक महान व्यक्ति में होता है। गांधीजी द्वारा दर्शाये गए आर्थिक कार्यक्रम, नये सिद्धांत और नये आदेश न केवल राजनैतिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण थे बल्कि आर्थिक, सामाजिक-दृष्टि से भी अति महत्वपूर्ण थे। गांधीजी के राजनैतिक विचारों के साथ आर्थिक विचारों का भी इतना महत्व था कि 1920 से 1948 तक के काल को गांधी युग कहना अनुचित नहीं होगा।

गांधीजी का सम्पूर्ण सामाजिक व राजनैतिक जीवन सत्य, अहिंसा, श्रम पर निर्भर था। गांधीजी सबसे अधिक महत्व, सादा जीवन, उच्च विचार पर देते थे। उनके अनुसार सुख और दुख दो मानसिक परिस्थितियां हैं और आवश्यकताओं की वृद्धि की कोई सीमा नहीं है।

गांधीजी कोई सैद्धांतिक आर्थिक विचारक नहीं थे। उन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों और आर्थिक दशाओं से प्रभावित होकर आर्थिक विचारों को लेखों, पुस्तकों, पत्र-व्यवहार व भाषणों के रूप में प्रस्तुत किये।

अर्थशास्त्र का उद्देश्य

गांधीजी अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र में कोई विशेष भेद नहीं मानते थे। उनके अनुसार 'जो अर्थशास्त्र नैतिक व भावात्मक मूल्यों की उपेक्षा करता है वह मधुमक्खी के छत्ते के समान है।' अर्थशास्त्र का अध्ययन मानव मूल्यों पर आधारित होना चाहिए न कि गणितीय सूत्रों पर आधारित अमूर्त विज्ञान के रूप में। गांधीजी अर्थशास्त्र के कल्याण व उद्देश्यों के प्रति तटस्थ रहने वाले अर्थशास्त्रियों की आलोचना करते थे। उनका विचार था कि समस्त मानव मूल्यों को मुद्रा के रूप में नहीं मापा जा सकता है। गांधीजी का विचार था कि अर्थशास्त्र का दृष्टिकोण नैतिकवादी होना चाहिए न कि भौतिकवादी। वे आवश्यकताओं को अनावश्यक रूप से बिना सोचे-समझे बढ़ाने के पक्ष में नहीं थे, बल्कि उनका मानना था कि भौतिक आवश्यकता मनुष्य का उद्देश्य नहीं होनी चाहिए। आवश्यकताओं को सीमित करके ही संतुष्टि को अधिकतम किया जा सकता है। आवश्यकताओं के सन्दर्भ में गांधीजी का विचार पाश्चात्य विचारकों से बिलकुल अलग था। इसी विचार से प्रभावित होकर प्रो. जे. के. मेहता ने अर्थशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार दी है 'अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो मानवीय आचरण का इच्छा रहित अवस्था में पहुंचने के लिए साधन के रूप में अध्ययन करता है।'

धन सम्बन्धी विचार

द्रव्य सम्बन्धी विचारों में गांधीजी रस्किन के अनुयायी प्रतीत होते हैं। रस्किन ने कहा है कि 'धन कुछ नहीं है जबकि सब कुछ तो मनुष्य जीवन है'। द्रव्य ने मानवीय मूल्यों को भुला दिया है मौद्रिक अर्थव्यवस्था ने उत्पादकों और उपभोक्ताओं के बीच खाई को और भी चौड़ा कर दिया है। बाजार का विस्तार इस प्रकार कर दिया है कि आम व्यक्ति की पहुंच से बाहर हो गया है। उनका मत है कि मानव को धन के पीछे नहीं दौड़ना चाहिए बल्कि जीवन के उच्च आदर्शों को प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए। उन्होंने कहा है कि जीवन का उचित मूल्य नैतिकता है न कि धन।

श्रम सम्बन्धी विचार

गांधीजी श्रम को ही धन मानते थे श्रम ही अर्थव्यवस्था का मूल तत्व है। उनका मानना था कि श्रम का विनिमय, स्वतंत्र, उचित एवं समान शर्तों पर होता है। अतः यह चोरी नहीं है। क्रोप्टकिन के समान गांधीजी ने भी यह विचार व्यक्त किया है कि 'कार्य करना हमारी अभिरुचि का विषय है और आलस्य एक बनावटी विकास है, श्रम की अवहेलना को देखते हुए गांधीजी ने अपना विचार व्यक्त किया है। शरीर रूपी अतुल्य जीवित मशीन को तो बर्बाद कर रहे हैं और उसके स्थान पर निर्जीव मशीनों के प्रयोग को प्राथमिकता दे रहे हैं। श्रम को प्राकृतिक नियम मानते हुए कहा है कि जो व्यक्ति इसका उल्लंघन करता है वे विपत्ति को आमंत्रित करते हैं, श्रम से न केवल शरीर स्वस्थ्य रहता है वरन् मस्तिष्क को भी प्रेरणा मिलती है। श्रम की महत्ता को ध्यान में रखते हुए रोटी के श्रम सिद्धान्त को प्रतिपादित किया है। प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं के परिश्रम द्वारा ईमानदारी से अपनी जीविका का उपार्जन करना चाहिए। इससे समाज में असमानता, भुखमरी, वर्ग भेद आदि स्वतः ही समाप्त हो जायेंगे। अमीर और गरीब दोनों के बीच का संघर्ष भी स्वतः समाप्त हो जायेगा।

विकेन्द्रीकरण और लघु उद्योग

गांधीजी उस संगठन के विरोधी थे जिनका निर्माण हिंसा पर आधारित हो। वे केन्द्रित अर्थव्यवस्था के विरोधी थे क्योंकि

उत्पादन के केन्द्रीयकरण द्वारा कुछ लोग उत्पादन को नियमित कर, लाखों लोगों को अपना दास बना लेते हैं। इसका प्रभाव केवल आर्थिक ही नहीं वरन् राजनैतिक रूप से भी खतरनाक है। वे उत्पादन को छोटे-छोटे पैमाने पर अनेक स्थानों पर चालू किये जाने के पक्ष में थे। उन्होंने कहा था कि भारी उद्योगों का केन्द्रीयकरण इस प्रकार होना चाहिए कि कुटीर उद्योगों को क्षति न पहुंचे और न राष्ट्रीय कार्यकलापों का एक बहुत थोड़ा अंश बना दे। छोटे-छोटे उद्योगों की गांवों में स्थापना से वितरण के साथ-साथ उत्पत्ति और उपभोग में सामंजस्य स्थापित हो जायेगा। उत्पत्ति की विकेन्द्रीकृत प्रणाली से रोजगार में वृद्धि होगी। वे उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में नहीं थे। उनका मत था कि इससे प्रजातंत्र की समस्याओं का समाधान नहीं हो सकेगा और अत्यधिक नगरीकरण तथा शहरों में भीड़-भाड़ को बढ़ावा मिलेगा। भारतीय किसान की अर्द्ध-बेरोजगारी दूर करने के लिए उन्होंने चरखा कार्यक्रम प्रारंभ किया तथा लघु उद्योगों के विस्तारण पर बल दिया। उनका कहना था कि लघु उद्योगों के माध्यम से आर्थिक विपत्ति को दूर कर मानसिक तनाव को भी दूर किया जा सकता है। डा. प्रेम कहते हैं कि 'महात्मा गांधी प्रत्येक किसान के लिए आर्थिक स्वतंत्रता तथा गांव के आर्थिक जीवन के लिए स्वतंत्र नियंत्रण के समर्थक थे।'

जनसंख्या सम्बन्धी विचार

गांधीजी बढ़ती हुई आबादी के पक्ष में नहीं थे। उनका विश्वास था कि जनसख्या अभिवृद्धि देश के प्राप्त संसाधनों के अनुरूप ही होनी चाहिए। गांधीजी संयम और ब्रह्मचर्य द्वारा उत्पत्ति को रोकने के पक्ष में थे। उन्होंने कहा था कि 'काम सम्बन्धी शिक्षा का प्रसार किया जाये जिसका उद्देश्य काम भावना पर विजय प्राप्त करना हो, किन्तु वहीं दूसरी ओर गांधीजी ने कहा 'मेरे विचार में उचित भूमि व्यवस्था, अच्छी कृषि और सहायक उद्योगों द्वारा यह देश आज की तुलना में दूनी जनसंख्या का पालन—पोषण कर सकता है। वे पर्याप्त अवसर जुटाने के पक्षधर थे।

मशीन सम्बन्धी विचार

गांधीजी बड़ी मशीनों के पक्ष में थे परन्तु उनका विचार था कि यंत्रीकरण उस स्थिति में अच्छा होता है जब काम की मात्रा की अपेक्षा काम करने वालों की संख्या कम होती है। वे जनाधिक्य को देखते हुए बड़ी-बड़ी मशीनों के प्रयोग के पक्ष में नहीं थे क्योंकि इससे बेकार श्रमिकों की संख्या में बढ़ोतरी होती है वे स्वयं समय और परिश्रम की बचत चाहते थे किन्तु मानव जाति के लोगों के लिए नहीं वरन् सभी के लिए। उनका विचार था कि मशीनों के प्रयोग से इने-गिने लोग लाखों लोगों का शोषण करने लगेंगे।

इसका मतलब यह नहीं कि गांधीजी मशीनों के उपयोग के विरोधी थे क्योंकि वे जानते थे कि चरखा और शरीर भी मशीन हैं। उस तरह की मशीन के पक्षधर थे जो मानव को सहायता पहुंचाकर उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि करती हो और जिसका संचालन मानव बिना उसका दास बने कर सके।

न्यासधारिता सम्बन्धी विचार

पूंजीवादी दोषों को दूर करने के लिए गांधीजी ने न्यासधारिता की बात कही है। मानवीय विकास के लिए निजी सम्पत्ति को समाप्त करने के पक्ष में थे लेकिन यह अल्पावधि में सम्भव नहीं है। इसलिए वे चाहते थे कि समस्त निजी सम्पत्ति को एक ट्रस्ट के रूप में रखी जानी चाहिए। पूंजीपतियों को समझना चाहिए कि यह सम्पत्ति निजी लाभ के लिए नहीं वरन् समस्त समाज के लिए है। ऐसी स्थिति में न्यासधारी को उतना ही लेने का अधिकार है जितना कि उसकी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए और सम्मानित जीवन बिताने के लिए आवश्यक है। उन्होंने पूंजीपतियों से न्यासधारिता के सिद्धांत को स्वीकार करने की अपील की है, जिससे विभिन्न वर्गों में आय की असमानता स्वयं समाप्त हो जायेगी। न्यासधारी के पारिश्रमिक के प्रश्न पर उनका कहना है कि वह कुछ अधिक पाने का अधिकारी है पर यह मात्रा भी निश्चित कर देनी चाहिए। न्यासधारी को उत्तराधिकारी का नाम सुझाने का अधिकार होना चाहिए लेकिन अन्तिम निर्णय लेने का अधिकार सरकार को होना चाहिए। गांधीजी पूंजीवाद के विरोध में, किसी भी हिंसक कदम उठाने के पक्ष में नहीं थे। उनका विश्वास था कि गरीबों का शोषण केवल कुछ पूंजीपतियों को नष्ट करने से नहीं रोका जा सकता वरन् गरीबों की असमानता दूर कर शोषण को समाप्त किया जा सकता है।

कृषि अर्थव्यवस्था सम्बन्धी विचार

कृषि भारत की आत्मा है बिना कृषि विकास किये भारत का आर्थिक विकास सम्भव नहीं है। उन्होंने कृषि सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाने के लिए भूमि सुधार कार्यक्रम, जमींदारी और जागीरदारी प्रथा खत्म करने का सुझाव दिया। वे मानते थे कि भूमि प्रकृति प्रदत्त है जिस पर व्यक्तिगत अधिकार न होकर सम्पूर्ण समाज का अधिकार होना चाहिए। वे कृषक स्वात्वाधिकार के समर्थ थे।

प्राकृतिक स्रोतों और मनुष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर सन्तुलित और नियोजित कृषि के समर्थक थे। उनका

(शेष पृष्ठ 29 पर)

कब तक होती रहेगी बाल-गोपालों की उपेक्षा?

विश्वनाथ गुप्त

बच्चा भगवान का स्वरूप होता है, बच्चा ही देश के भविष्य का निर्माता होता है—जिस देश में ये बातें कही जाती हैं वहीं बाल श्रमिक के रूप में बच्चों का जगह-जगह शोषण भी होता है। एक अनुमान के मुताबिक हमारे देश में कुल जनसंख्या का 4.66 और श्रमशक्ति का 5.95 प्रतिशत बाल श्रमिकों का है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार पहली मार्च, 1978 में बाल श्रमिकों की संख्या करीब 1,62,50,000 थी। योजना आयोग के अनुसार सन् 1985 में यह संख्या 1,75,80,000 हो गई और अब अनुमान लगाया जा रहा है कि इस वर्ष के अंत तक यह संख्या 1 करोड़ 82 लाख के करीब हो जाएगी। एक ओर तो कारखाना अधिनियम, 1948 के अंतर्गत और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 24 के अनुसार 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चे को किसी कारखाने या खतरनाक कार्य में नियुक्त नहीं किया जा सकता। दूसरी ओर आतिशबाजी या कांच पिघला कर चूड़ियां बनाने जैसे खतरनाक उद्योगों में बाल मजदूर ज्यादा नजर आते हैं।

करीब 80 प्रतिशत बाल श्रमिक असंगठित क्षेत्र-कृषि में कार्यरत हैं। इसके अलावा छोटी उम्र के बच्चों को होटलों, ढाबों, घरों तथा भवन निर्माण के कामों में लगाया जाता है, क्योंकि एक तो यह बड़ी उम्र के श्रमिकों की तुलना में काम अधिक करते हैं दूसरे मजदूरी कम मांगते हैं। चाय-बागानों और बीड़ी उद्योग में भी बच्चों से काम लेना अधिक पसंद किया जाता है। बागान श्रमिक अधिनियम, 1951 के अनुसार 12 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को काम पर नहीं लिया जा सकता, लेकिन 1978-79 में किए गए मदुरै इंस्टीट्यूट आफ सोशल वर्क के सर्वेक्षण दल के नेता डा. मुखर्जी के अनुसार मुन्नार (केरल) के चाय-बागानों की श्रमिक महिलाओं की कार्यदशा के अध्ययन के दौरान यह पाया गया कि श्रमिक महिलाओं के बच्चों को चलने-फिरने लायक होते ही काम पर लगा लिया जाता है। बीड़ी और माचिस उद्योगों में काम करने वाले बच्चों के बारे में कारखानों के मालिक कहते हैं—बच्चे बड़ों से ज्यादा मुस्तैदी से काम करते हैं, वे ज्यादा देर तक पालथी मारकर बैठे रहते हैं और थकान महसूस नहीं करते।

बच्चों से ज्यादा काम लेकर न तो उन्हें पूरी मजदूरी मिलती है, और न उनकी सेहत और सुरक्षा का ही ख्याल रखा जाता है। फिरोजाबाद का कांच उद्योग भारत में ही नहीं विश्व में भी मशहूर है। यहां रंग-बिरंगी, तरह-तरह की डिजाइनों की चूड़ियां बनती हैं जिनके बनाने में बाल श्रमिकों का बहुत योगदान है। वहां पर बच्चों को 1400 डिग्री सेंटीग्रेट तापमान में काम करना पड़ता है जिसका उनके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ता है। माचिस और आतिशबाजी बनाने वाले कारखानों में भी अत्यंत खतरनाक हालात में बच्चे काम करते हैं। 1981 में शिवकाशी के आतिशबाजी बनाने वाले कारखाने में हुए अग्निकांड में 32 व्यक्ति जिंदा जल गए थे जिनमें 6 बच्चे भी थे।

भोपाल में किए गए सर्वेक्षण के अनुसार वहां बीड़ी उद्योग में काम करने वाले बच्चे कई प्रकार के रोगों के शिकार हो जाते हैं, क्योंकि वे बहुत ही अस्वास्थ्यकर वातावरण में काम करते हैं। प्रसिद्ध पत्रकार शीला बारसे ने भिवंडी शहर के औद्योगिक क्षेत्र में पावरलूम उद्योग में काम करने वाले बच्चों की शोचनीय स्थिति के बारे में अपनी सर्वेक्षण रिपोर्ट में लिखा था—इस उद्योग में काम करने वाले बच्चे 12-12 घंटे भी काम करते हैं। न तो उन्हें पूरी मजदूरी मिलती है और न अन्य सुविधाएं। मिर्जापुर तथा वाराणसी के कालीन उद्योग में काम करने वाले बच्चों के स्वास्थ्य पर कपास, रेशम और ऊन के धूल-कणों का बहुत बुरा असर पड़ता है। ये धूल-कण उनकी सांस के साथ शरीर में जाते हैं। परिणामस्वरूप बच्चे को टी. बी. जैसे रोग लग जाते हैं।

यहां सवाल उठता है कि क्या बाल श्रमिकों से काम लेना बंद किया जा सकता है और यदि ऐसा संभव नहीं है तो क्या उनका शोषण रोका जा सकता है? इस संबंध में एक मजेदार तथ्य यह है कि कुछ साल पहले बालश्रम पर प्रतिबंध लगाने की बात उठी थी तो अखिल भारतीय गलीचा निर्माता संघ ने यह चेतावनी दी थी कि यदि बालश्रम पर प्रतिबंध लगाया गया तो गलीचों की कीमत 60 प्रतिशत बढ़ जाएगी। चूंकि गलीचों और कालीनों का बड़ी मात्रा में निर्यात होता है और उससे हमें विदेशी मुद्रा भी पर्याप्त मात्रा में मिलती है, इसलिए यह चेतावनी गंभीरता से ली गई। यह चेतावनी दूसरे शब्दों में बता रही थी कि कालीन उद्योग में बाल श्रमिक जरूरी हैं और वह भी इसलिए कि उद्योग को उससे वयस्क श्रमिकों की अपेक्षा अधिक लाभ होता है। इसलिए बालश्रम पर प्रतिबंध लगाने पर विचार त्याग देना चाहिए। यह माना जा सकता है कि मां-बाप की मजबूरी या देश की परिस्थितियों को देखते हुए बच्चों से काम लेना बंद नहीं किया जा सकता लेकिन उनका शोषण तो रोका जा सकता है।

सरकार ने भी यह महसूस किया कि अवांछनीय होते हुए भी बालश्रम सामाजिक-आर्थिक विवशताओं के कारण विभिन्न नियोजनों में है और रहेगा। इसलिए सभी प्रकार के नियोजनों में इस पर प्रतिबंध लगाना तो संभव नहीं है। अतः सरकार की यह नीति तय हुई कि 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को कारखानों, खानों तथा अन्य खतरनाक नियोजनों में भारतीय संविधान के प्रावधानों के मुताबिक, काम पर लगाने पर रोक लगा दी जाए और जो नियोजन खतरनाक नहीं हैं उनमें बाल श्रमिकों की कार्यदशा सुधारने के लिए आवश्यक नियम बनाए जाएं। नीति के अनुसार बाल श्रमिक (निषेध तथा नियमन) अधिनियम दिसंबर 1986 में पास किया गया जिसके अनुसार कुछ व्यवसायों और प्रक्रियाओं में बालश्रम पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। इनमें आतिशबाजी का सामान बेचने वाली अस्थाई लाइसेंस प्राप्त दुकानें, स्लेट पेंसिल उद्योग, सीसा, पारा, मैंगनीज, एस्बेस्ट्स आदि जहरीली धातुओं से संबंधित निर्माण प्रक्रियाएं शामिल हैं।

श्रम मंत्रालय के अंतर्गत एक 'बाल श्रमिक कक्ष' की स्थापना भी की गई है। इसका काम बाल श्रमिकों की कार्यदशा सुधारने के लिए नीतियां और योजनाएं बनाना और उन पर अमल करने का है। इस कक्ष ने विभिन्न समाजसेवी संगठनों को आर्थिक सहायता दी है। इन संस्थाओं में सेवा-अहमदाबाद, इन्स्टीट्यूट आफ रूरल वर्कर्स-औरंगाबाद, कर्नाटक राज्य बाल कल्याण परिषद, सघन क्षेत्र विकास समिति-वाराणसी, श्रमिक विद्यापीठ हैदराबाद, भारतीय बाल कल्याण परिषद—नई दिल्ली प्रमुख हैं।

बाल श्रमिकों की समस्याओं का समाधान सिर्फ कानून बनाने से नहीं हो सकता, इस बात को महसूस करते हुए सरकार ने अगस्त 87 में बालश्रम के संबंध में राष्ट्रीय नीति की घोषणा की। इस नीति के अंतर्गत बालश्रम बहुल क्षेत्रों में नई परियोजनाएं बनाई गईं। जिन क्षेत्रों के लिए ये परियोजनाएं बनाई गई वे निम्नलिखित हैं:

(1) माचिस उद्योग, शिवाकासी (तमिलनाडु),(2) हीरा पालिश उद्योग, सूरत (गुजरात), (3) बहुमूल्य पत्थर पालिश उद्योग, जयपुर (राजस्थान), (4) पीतल उद्योग, मुरादाबाद (उत्तर प्रदेश), (5) कांच की चूड़ियां तथा कांच का अन्य सामान बनाने का उद्योग, फिरोजाबाद (उ. प्र.), (6) कालीन उद्योग, मिर्जापुर, वाराणसी (उ. प्र.), (7) गलीचा उद्योग, जम्मू व कश्मीर, (8) ताला उद्योग, अलीगढ़ (उ. प्र.), (9) स्लेट उद्योग, मंदसौर (म. प्र.), (10) स्लेट उद्योग, मार्कापुर, (आं. प्र.)।

उपर्युक्त परियोजनाओं में से कुछ पर कार्य आरंभ भी हो चुका है। इनमें मुख्य निम्नलिखित हैं :

1. राजस्थान के जयपुर शहर में बहुमूल्य पत्थरों पर पालिश करने वाले बाल-श्रमिकों के कल्याण की परियोजना।

2. मध्य प्रदेश के मंदसौर में स्लेट उद्योग में काम करने वाले बच्चों के कल्याण की परियोजना।

3. आंध्र प्रदेश के मार्कापुर स्थित स्लेट उद्योग में कार्यरत बाल-श्रमिकों के कल्याण की परियोजना।

उपर्युक्त परियोजनाओं के अंतर्गत बाल-श्रमिकों के कल्याण के लिए निम्नलिखित कार्य किए जा रहे हैं:

1. बाल श्रमिक (निषेध तथा नियमन) अधिनियम 1986, कारखाना अधिनियम 1948, खान अधिनियम 1952, तथा अन्य ऐसे अधिनियमों के अंतर्गत बाल श्रमिकों के नियोजन सम्बन्धी प्रावधानों का सख्ती से पालन कराया जाना।

2. स्वैच्छिक तथा सामाजिक संस्थाओं द्वारा बाल श्रमिकों के शोषण को रोकने के लिए समाज में जागरुकता पैदा करना तथा अन्य ऐसे उपाय करना जिनसे शोषण को रोका जा सके।

3. बाल श्रमिकों के लिए ऐसे विद्यालयों की स्थापना करना जहां पर उनकी शिक्षा तथा सेहत की पूरी व्यवस्था तथा देखभाल हो।

4. बाल श्रमिकों के माता-पिता के लिए प्रौढ़ शिक्षा की उचित व्यवस्था करना।

5. 'गरीबी हटाओ' कार्यक्रम के अंतर्गत बाल श्रमिकों के माता-पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यों को शामिल करना।

वास्तव में यदि देखा जाये तो बाल श्रमिकों की समस्या एक सामाजिक-आर्थिक समस्या है। हमारे देश में ही नहीं, बल्कि दूसरे देशों में भी सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के कारण बच्चों का शोषण होता है। 1975 में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने एक रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। उसके अनुसार 97.2 प्रतिशत बाल-श्रमिक तीसरी दुनिया के हैं। रिपोर्ट में यह भी कहा गया कि सन् 2000 ई. तक बाल-श्रमिकों की संख्या 98.1 प्रतिशत हो जाएगी। संगठन के अनुसार विश्व के 10 करोड़ बच्चों को अपनी आजीविका के लिए, सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के कारण, मजदूरी करने के लिए विवश होना पड़ता है। इन 10 करोड़ बच्चों में 2 करोड़ से अधिक बच्चे अकेले हमारे देश में हैं।

आज हमारे देश में लाखों परिवार ऐसे हैं जो अपनी गरीबी के कारण खुद तो जीवनपर्यन्त काम करते ही हैं, अपने बच्चों को भी काम में लगाए रखते हैं। ये बच्चे अपनी-अपनी

खेलने-खाने तथा पढ़ने-लिखने की उम्र में काम करने को मजबूर होते हैं। इसके लिए माता-पिता की गरीबी तो मुख्य कारण है ही, साथ ही उनकी अशिक्षा भी एक बहुत बड़ा कारण है। अशिक्षा के कारण ही अभी तक उनके दिलों में ये धारणा बनी हुई है कि बच्चे जितने ज्यादा होंगे, उतना ही परिवार का बोझ हल्का होगा। क्योंकि वे भी काम में हाथ बंटाकर परिवार की आर्थिक रूप से सहायता करेंगे। लेकिन प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति यह जानता है कि यह धारणा कितनी गलत है।

इसलिए आज कानून बनाने से अधिक आवश्यकता इस बात की है कि बच्चों के मां-बाप की सामाजिक-आर्थिक दशा में सुधार किया जाये। उनके लिए प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था तो हमें करनी ही चाहिए। यह देखने में आया है कि बाल श्रमिकों तथा उनके मां-बाप के अनपढ़ होने के कारण नियोजक उसका नाजायक फायदा उठाते हैं। आयु सम्बन्धी प्रमाण पत्र न होने के कारण वे श्रम कानूनों की अवहेलना करते हैं। इसके लिए उनका शिक्षित होना आवश्यक है। इसके अलावा रोजगार के ऐसे अवसर उनको मिलने चाहिए जिससे उनको अपने बालगोपालों को कम उम्र में काम पर न लगाना पड़े।

14 वर्ष तक की उम्र के बच्चों को न केवल अनिवार्य व मुफ्त शिक्षा मिलनी चाहिए, बल्कि जिन बच्चों के मां-बाप ज्यादा गरीब हैं उनके लिए भोजन तथा वस्त्र आदि की व्यवस्था भी सरकार की तरफ से होनी चाहिए। ऐसा करने पर ही मां-बाप अपने बच्चों को बोझ न समझकर उन्हें अपनी अमूल्य सम्पत्ति समझेंगे।

इस सम्बन्ध में एक बात यह भी ध्यान में रखनी होगी कि हमें हर कार्य सरकार पर ही नहीं छोड़ना चाहिए। बच्चे देश के भविष्य हैं। उनके लिए सारे देश के नागरिक उत्तरदायी हैं। उनको अपना उत्तरदायित्व निभाना चाहिए। जहां भी बच्चों का शोषण होता हो, उन्हें रोकना चाहिए।

बाल-श्रमिकों की समस्या का समाधान करने की दिशा में एक अनूठा प्रयास तमिलनाडु के कोडाई कनाल नामक स्थान पर सन् 1980 में किया गया था। वहां एक श्रमिक नगर बसाया गया जिसमें 230 बाल-श्रमिक रखे गए। उस नगर में बच्चों के लिए उपयुक्त स्कूल के अतिरिक्त कुछ लघु उद्योग भी स्थापित किए गए। पढ़ाई के काम से निपटने के बाद बच्चे इन लघु उद्योगों में साबुन, अगरबत्ती आदि बनाने का कार्य करते थे। इस काम के बदले में बच्चों को निःशुल्क भोजन तथा आवास की सुविधा तो थी, साथ ही उनको प्रतिदिन 6 रुपये और मिलते थे। इस तरह की योजनाएं अन्य स्थानों पर भी बनाई जा सकती हैं, किन्तु ये योजनाएं सफल तभी होंगी जब अत्यन्त साहस के साथ तमाम बाधाओं से लड़ते हुए उनको कार्यान्वित किया जाये।

के.-84 ए, कालकाजी, नयी दिल्ली

(पृष्ठ 26 का शेष)

कहना था कि गांवों को अपने लिए आवश्यक खाद्यान्न फसलों और वस्त्रों के लिए कपास का उत्पादन स्वयं करना चाहिए। जिससे प्रत्येक गांव आत्मनिर्भर गांव बन सकें।

वितरण व राजस्व सम्बन्धी विचार

गांधीजी राष्ट्रीय आय का वितरण समानता के सिद्धांत के आधार पर चाहते थे। समानता का अर्थ यह नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्रीय आय में समान भाग मिलना चाहिए अपितु इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक साधन को उसकी आवश्यकतानुसार धन मिलना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि गांधीजी न तो पूंजीवाद व्यवस्था के पक्षधर थे न ही साम्यवादी विचारधारा के। उनके समाजवाद और आज के समाजवाद के काफी अन्तर है गांधीजी तो व्यक्ति को महत्व देते थे। उनकी नजर में देश का कोई व्यक्ति न छोटा है और न बड़ा। गांधीजी प्रत्येक पर्याप्त अवसर जुटाने के पक्षधर थे।

समाजवाद में जहां एक ओर जनता को राज्य द्वारा निर्धारित नीतियों का पालन करना होता है वहीं दूसरी ओर गांधीवादी समाजवाद में यदि जनता को सरकार की नीतियां पसन्द नहीं हैं तो असहयोग का रास्ता अख्तियार कर सकती है।

गांधीजी ने भारतीय समाज का अध्ययन बहुत ही सूक्ष्म ढंग से किया था। वे भारतीय समाज की दशा को देखकर अत्यंत दुखी थे। इन्हीं स्थिति को देखते हुए उन्होंने सर्वोदय योजना दी थी, जिसके द्वारा सच्चे स्वराज्य की स्थापना सम्भव हो सकती है। सर्वोदय योजना को कार्यान्वित कराने के लिए उनके सुझावों में कृषकों और श्रमिकों की ओर पूरा ध्यान दिये जाने, शिक्षा प्रसार पर उचित ध्यान दिये जाने, जाति भेदभाव को समाप्त करने आदि पर विशेष बल दिया गया था और स्त्रियों को समान अधिकार पर भी बल दिया गया।

व्याख्याता—अर्थशास्त्र
श्रीगुरु गोविन्द सिंह कालेज
पटनासिटी (बिहार)

भारत में दक्षेस बालिका वर्ष

शोभना जैन

भारत में हर वर्ष जन्म लेने वाली एक करोड़ बीस लाख लड़कियों में से एक चौथाई जीवन के पंद्रह बसंत से आगे यह दुनिया नहीं देख पाती हैं और यह एक कड़वा सच है कि महिला मौतों की संख्या के छठें हिस्से के लिए महिलाओं के साथ होने वाला भेदभाव जिम्मेदार है। भेदभाव का यह सिलसिला न केवल पालने से बल्कि उसके जन्म से पहले शुरू हो जाता है।

दक्षिण एशियाई देशों के संगठन, दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग परिषद (दक्षेस) बालिका वर्ष के मौके पर जारी एक अधिकारिक दस्तावेज में ये चौंका देने वाले आंकड़ें सामने आये हैं।

जहां नारी की पूजा होती है वहां देवताओं का वास होता है। वेदों की दी हुई यह सीख सुनते-सुनते भले ही हमारी कई की पीढ़ियां गुजर गई हों लेकिन हकीकत यही है कि दुनिया भर में महिलायें आज भी विशेषतौर पर इस क्षेत्र में घर के आंगन से लेकर घर से बाहर की दुनिया में बड़े पैमाने पर भेदभाव का शिकार हैं। इस भेदभाव से निबटने में सरकारी स्तर पर सहयोग देने की कोशिश के बतौर (दक्षेस) ने इस वर्ष को बालिका वर्ष के रूप में मनाने का निश्चय किया।

1987 के दक्षेस सम्मेलन में महिला तथा शिशु की दशा में सुधार लाने और इसकी शुरुआत बालिका पर विशेष ध्यान दिये जाने से करने का आह्वान किया गया था। वर्ष 1988 के इस्लामाबाद शिखर सम्मेलन में विशेष तौर पर इस क्षेत्र में महिलाओं के साथ होने वाले भेदभाव को देखते हुए बालिकाओं की दशा में सुधार लाने की दृष्टि से यह निर्णय किया गया था। भारत समेत पाकिस्तान, बंगलादेश, श्रीलंका, भूटान, मालदीव और बर्मा दक्षेस के सदस्य देश हैं।

दक्षेस बालिका वर्ष के अवसर पर भारत में बालिकाओं के कल्याण के लिए अनेक कल्याणकारी कार्यक्रम शुरू किये गये हैं तथा अनेक योजनायें बनी हैं। केन्द्र सरकार ने खासतौर पर इसके लिए एक करोड़ पचहत्तर लाख रुपये का बजट रखा और एक विशेष कार्य योजना तैयार की है। यह सही है कि इस तरह के सरकारी अभियानों से समस्या पर चाहे कुछ वक्त के लिए ही सही, सभी का ध्यान जाता है लेकिन क्या यह भी सही नहीं है कि महिला कल्याण के लिए अब तक बने तमाम कानूनों का क्रियान्वयन कारगर ढंग से नहीं हो पाया है? यही वजह है कि कानूनन बराबरी का दर्जा पाने के बावजूद समाज में बराबरी का दर्जा वह आज तक हासिल नहीं कर पायी है।

दक्षेस के दस्तावेज के अनुसार भारत की कुल आबादी का लगभग चौथा हिस्सा 19 वर्ष तक की आयु की लड़कियों का है। बीसवीं सदी के हर दशक में प्रति हजार पुरुषों की तुलना में महिलाओं का औसत निरन्तर कम होता जा रहा है। वर्ष 1901 में यह संख्या जहां 972 थी वहीं 1981 में यह घटकर 933 हो गयी। अलबत्ता केरल में यह अनुपात उलटा है (1032) पांच अन्य राज्यों कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, तमिलनाडु तथा हिमाचल प्रदेश में यह अनुपात 950 के लगभग था। शेष अन्य राज्यों में पुरुषों की संख्या महिलाओं से 10 प्रतिशत ज्यादा थी। हरियाणा, बिहार, जम्मू-कश्मीर, पंजाब, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में लड़कियां बचपन में ज्यादा मरती हैं। यह स्थिति क्यों है? इस क्यों का जवाब शायद हमें अपने से ही पूछना होगा।

अब जरा दक्षेस बालिका वर्ष के अवसर पर सरकार द्वारा तैयार की गयी विशेष कार्य योजना पर चर्चा करें। सरकार ने बालिकाओं की शिक्षा तथा साक्षरता के लिए अनेक कदम उठाये हैं तथा उठाये जा रहे हैं लेकिन इस क्षेत्र में भी आंकड़े चौंका देने वाले हैं जिससे यथास्थिति का पता चलता है।

सरकारी आंकड़ों के अनुसार पुरुषों की 48.5 प्रतिशत साक्षरता दर की तुलना में महिला साक्षरता दर आजादी के 40 वर्ष बाद भी मात्र 24.8 प्रतिशत तक ही सीमित है। वर्ष 1986-87 के आंकड़ों के अनुसार प्राइमरी स्तर पर लड़कियों का पंजीकरण स्तर 79.9 प्रतिशत था वहीं लड़कों के मामले में यह आंकड़ा 106.4 प्रतिशत था। अब जरा प्राइमरी स्तर पर ही स्कूली पढ़ाई छोड़ देने वाली लड़कियों का आंकड़ा देखें। आलोच्य अवधि में ही यह 70 प्रतिशत रहा। शहरों की तुलना में गांवों में, और वहां भी अनुसूचित जाति/जनजाति

बालिकाओं की अन्य स्थितियों की तरह शैक्षणिक स्थिति और भी शोचनीय थी।

वर्ष 1981 की जनगणना के अनुसार साक्षरता दर अरुणाचल प्रदेश में (11.3 प्रतिशत) सबसे कम थी। उसके बाद राजस्थान (11.4), बिहार (13.5) तथा उत्तर प्रदेश (14.0) का स्थान था। केरल 65.7 प्रतिशत के साथ इस मामले में सबसे ऊपर था। एक साक्षर महिला एक साक्षर परिवार की गारंटी है। इस मंत्र वाक्य की दिशा में हम जितना काम कर पाये, उसे संतोषजनक कतई नहीं कहा जा सकता।

आज भी लड़कियां छोटे भाई-बहिनों को पालने, आर्थिक दबाव को देखते हुए बचपन से ही काम धंधा शुरू कर देती हैं। यहां महिला साक्षरता की ही बात करते हुए यूं कहा जा सकता है कि भले ही काफी लोगों के लिए अब लड़कियों की पढ़ाई-लिखाई 'बड़े आदमियों की बातें' न रह गई हों लेकिन यह भी सही है कि वे इसे एक जरूरत भी नहीं मानते हैं।

महिला कल्याण उपमंत्री श्रीमती उषा सिंह ने पिछले दिनों कहा था कि सरकार खेतों तथा औद्योगिक ठिकानों के पास पालनाघर खोलने के प्रस्ताव पर गौर कर रही है क्योंकि अधिकतर देहात तथा समाज के कमजोर तबके में छोटी-छोटी लड़कियों को घर का काम करने तथा आर्थिक मजबूरियों की वजह से या तो पढ़ने ही नहीं दिया जाता या फिर उनकी पढ़ाई बीच में ही छुड़ा दी जाती है।

एक सर्वेक्षण के अनुसार देश के कुल चार करोड़, चालीस लाख बाल श्रमिकों में से 40 प्रतिशत लड़कियां हैं और यह संख्या चिन्ताजनक रूप से बढ़ती जा रही है। स्कूली पढ़ाई बीच में ही छोड़ देने अथवा बच्चियों के निरक्षर रह जाने की एक बड़ी वजह बच्चियों का मजदूरी करना है। न तो इन बच्चियों को पूरा वेतन मिलता है और न ही अन्य सुविधायें।

तमिलनाडु के शिवकासी आतिशबाजी फैक्टरियों में काम करने वाले बाल श्रमिकों में से 90 प्रतिशत से अधिक लड़कियां होती हैं। उत्तर प्रदेश में चिकन तथा जरदोजी उद्योग में भी बालिका श्रमिकों का यही अनुपात है। अधिकतर ऐसी कामकाजी लड़कियां ग्रामीण क्षेत्रों में पाई जाती हैं।

बीड़ी, धूप-अगरबत्ती एवं पापड़ बनाने जैसे घरेलू उद्योगों में तो ये बच्चियां काम करती ही हैं, काफी लड़कियां कागज की थैलियां तथा कपड़ा बनाने और बिनौले आदि उद्योगों में भी काम करती हैं।

किसी फैक्टरी या वर्कशाप में काम नहीं करने की वजह से ये कानून की परिधि में नहीं आती हैं। इसके अलावा बड़ी तादाद में बच्चियां घरों में घरेलू मदद का काम करती हैं, कूड़ा-करकट तथा चीथड़े बीनती हैं और इसी तरह के तमाम काम करती हैं।

बालिका वर्ष को ध्यान में रखते हुए सरकार ने दूरदर्शन तथा अन्य प्रचार माध्यमों के जरिये लड़कियों के साथ घर-परिवारों में किए जाने वाले भेदभाव संबंधी लघु चित्र टी.वी. स्पॉट भी दिखाने शुरू किए हैं ताकि हम सब अपने को आईने में देख सकें। इस तरह के प्रयास निश्चय ही एक क्षण को हमें ठिठकने के लिए मजबूर करते हैं।

दक्षेस बालिका वर्ष कार्य योजना के तहत 'इस वर्ष एक भी बाल विवाह नहीं' का नारा दिया गया है लेकिन हम सभी मानते हैं कि यह संभव नहीं। क्योंकि यह समस्या सिर्फ सामाजिक नहीं, तमाम आर्थिक पहलू भी इससे जुड़े हुए हैं। महिला कल्याण उपमंत्री श्रीमती उषा सिंह का भी मानना है कि यह सोच लेना कि इस वर्ष सारे बाल विवाह बंद हो जायेंगे, संभव नहीं है। इसके लिए चरणबद्ध ढंग से कार्य करना होगा। समस्या के सामाजिक-सांस्कृतिक तथा आर्थिक पहलुओं को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। जनचेतना व साक्षरता इस दिशा में पहला कदम है।

एक अनुमान के अनुसार देश में हर वर्ष अंदाजन 45 लाख विवाह होते हैं जिसमें से 30 लाख विवाह 15-19 वर्ष की आयु वर्ग के होते हैं। 15-24 आयु वर्ग में होने वाली महिलाओं की मौतों में 43 प्रतिशत का संबंध प्रसव व गर्भावस्था से होता है।

बाल विवाहों को रोकने तथा बच्ची पर बचपन में ही मातृत्व का भार पड़ जाने की प्रवृत्ति को रोकने के लिए सरकार विशेष ध्यान दे रही है। विवाह की आयु तथा बालिका माताओं की समस्या पर इस वर्ष विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

बाल विवाह की वजह से बालिकाओं का न केवल बचपन मरता है बल्कि उनका शारीरिक विकास रुक जाता है और ऐसी बच्ची माताओं की संतानें भी स्वस्थ नहीं हो पाती हैं जिससे दोनों की ही मृत्यु दर बढ़ती है तथा मां व शिशु प्रजनन दर भी बढ़ती है।

लड़कियों के साथ पौष्टिक आहार व स्वास्थ्य के संदर्भ में जो भेदभाव बरता जाता है उस पर भी इन प्रचार माध्यमों में उंगली उठाई जाती है। गुजरात के पौष्टिक आहार कार्यक्रम संबंधी एक सर्वेक्षण में पाया गया कि इन केन्द्रों में पंजीकृत लड़कों की संख्या लड़कियों से ज्यादा थी यानी घर में जो स्थिति अभिभावकों ने बना रखी थी, सरकारी मदद पाने में भी उसे बनाये रखा था। जहां पर केन्द्रों में भेजे जाने वाले बच्चों की संख्या निश्चित कर दी गयी थी वहां पुत्रों को ही भेजा जाता था।

इस सोच से तो आज भी बहुत-से परिवार जकड़े हुए हैं कि लड़की को अगर अच्छी खुराक दी जायेगी तो वह जल्दी बड़ी होगी और उसकी शादी करने की जल्दी फिक्र करनी होगी।

अब जरा बात करें दक्षेस बालिका वर्ष के मौके पर चल रही योजनाओं की। सरकार का इस वर्ष 16 वर्ष की आयु तक की किशोरियों को रेलों तथा बसों में निःशुल्क यात्रा सुविधा दिये जाने का विचार था। श्रीमती उषा सिंह के अनुसार इस बारे में उनके मंत्रालय ने रेल विभाग तथा राज्य सरकारों को लिखा था। एक महत्वाकांक्षी कानून जो सरकार इस वर्ष पारित किये जाने की सोच रही है वह है लिंग परीक्षण पर रोक क्योंकि इस प्रणाली की आड़ में बालिका भ्रूण को नष्ट कर दिया जाता है। दक्षेस बालिका वर्ष के अवसर पर जारी एक सरकारी दस्तावेज में भी चेतावनी दी गयी है कि यदि इस प्रवृत्ति को नहीं रोका गया तो जनसंख्या संतुलन काफी गड़बड़ा सकता है। एक स्वैच्छिक संगठन द्वारा भ्रूण लिंग परीक्षण के बाद किए गए गर्भपातों के सर्वेक्षण में पाया गया कि 8000 गर्भपातों में से 7099 गर्भपात बालिका भ्रूणों के थे। जन्म से ही पहले बच्ची के साथ भेदभाव शुरू किये जाने के इस सिलसिले को यदि हम इस वर्ष कानूनी तौर पर रोक पायें तो निश्चय ही यह एक उपलब्धि होगी।

घर तथा घर से बाहर बालिकाओं को समाज में उनका उचित स्थान दिलवाने, बालिकाओं पर अत्याचारों को रोकने के लिए कदम उठाना भी इस कार्य योजना में शामिल है। बच्चियों को वेश्यावृत्ति में जाने तथा देवदासी बनने से रोकना भी इस कार्य योजना का अंग है। इसके अलावा सरकार वेश्याओं के बच्चों तथा बाल वेश्याओं के पुनर्वास के लिए भी विशेष कदम उठा रही है।

इसी वर्ष को ध्यान में रखते हुए देश भर में बालिका शिविर लगाए जाने की भी योजना है जहां बालिकाओं को उनके अधिकारों तथा जिम्मेवारियों से अवगत कराया जायेगा। इन शिविरों में आने वाली दस से चौदह तथा चौदह से अठारह वर्ष के आयु वर्ग की किशोरियों के लिए विशेष प्रोत्साहन शुरू किए जाने का भी विचार है।

महिला तथा बाल कल्याण मंत्रालय ने दक्षेस बालिका वर्ष के मौके पर मैट्रिक की परीक्षा में जिले में प्रथम आने वाली बालिका के लिए एक हजार रुपये का एक वार्षिक पुरस्कार शुरू किये जाने का भी निर्णय किया है। यह पुरस्कार राष्ट्रीय बाल कोष निधि से शुरू किया जायेगा।

इस अवसर पर देश में होने वाले विभिन्न सम्मेलनों तथा गोष्ठियों के अलावा प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने सितम्बर माह में दक्षेस बालिका वर्ष के अवसर पर एक विशेष डाक टिकट तथा एक सिक्का भी जारी किया।

विभाग ने बालिकाओं के प्रति समाज के नजरिये में बदलाव लाने तथा इस बारे में सामाजिक चेतना लाने की जरूरत को बहुत महत्वपूर्ण माना है तथा इस संबंध में एक विस्तृत कार्यक्रम तैयार किया है। बालिकाओं के कल्याण के लिए चलाये जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों का भी विभाग जायजा लेगा तथा उनकी समीक्षा की जाएगी। गत जून माह में इस्लामाबाद में 'विकास में महिलायें' विषय पर दूसरी दक्षेस मंत्री स्तरीय बैठक में बालिका कल्याण कार्यक्रमों सहित महिला विकास के कार्यक्रमों की प्रगति का जायजा लिया गया तथा इस संबंध में और कदम उठाये जाने का आह्वान किया। महिला कल्याण उपमंत्री श्रीमती उषा सिंह ने इस बैठक में भारत का प्रतिनिधित्व किया।

दक्षेस देशों की बालिकायें बड़े पैमाने पर भेदभाव की शिकार हैं। यहां हम भारत के केवल एक पड़ोसी देश श्रीलंका की चर्चा करते हैं। श्रीलंका की कुल एक करोड़ 60 लाख की आबादी का 60 प्रतिशत हिस्सा महिलाओं का है। अन्य विकासशील देशों की तरह वहां भी महिलायें घर और बाहर दोनों की जिम्मेदारी संभालती हैं। घर का चौका-चक्की संभालने के साथ-साथ बाहर से पानी भर कर लाती हैं, खेत-खलिहानों में काम करती हैं और हाट-बाजार में सामान बेचती हैं तथा अपनी बच्ची को विरासत के नाम पर यही सब कुछ सौंप कर हमेशा के लिए आंख मूंदती हैं। अध्ययन के अनुसार वहां बच्चियों तथा महिलाओं में कुपोषण तथा शोषण को इसी बात से समझा जा सकता है कि वहां महिलाओं का औसत कद 150 सें. मी. तथा औसत वजन 46-49 कि. ग्राम होता है और ऐसी माताओं के शिशु भी स्वाभाविक तौर पर कमजोर होते हैं। आर्थिक दृष्टि से समाज के कमजोर तबके की बालिकायें तथा महिलाओं की हालत तो और भी खराब होती है।

श्रीलंका में अठारह प्रतिशत लड़कियों की शादी 19 वर्ष से कम उम्र में हो जाती है हालांकि वहां भी महिलाओं की विवाह की औसत आयु बढ़ रही है लेकिन इसी तरह किशोरी माताओं की संख्या भी बढ़ रही है जिससे कमजोर नस्लें पैदा होती हैं। बंगलादेश, पाकिस्तान, भूटान, मालदीव तथा बर्मा में भी बालिकाओं तथा महिलाओं की यही स्थिति है।

महिला कल्याण के लिए कानून तो बहुत हैं। उनके कानूनी अधिकारों का अध्याय तो बहुत सुनहरा है लेकिन कमी उन कानूनों के क्रियान्वयन में है। बाल विवाह रोकने के लिए शारदा कानून है लेकिन पुलिस और प्रशासन तंत्र की आंखों के

सामने धड़ल्ले से बाल विवाह होते हैं। लिंग परीक्षण कानून की आड़ में बालिका भ्रूण नष्ट कर दिये जाते हैं। इसलिए सामाजिक, मानसिक सोच में बदलाव के साथ-साथ कानूनों के कारगर ढंग से क्रियान्वयन की भी जरूरत है।

दक्षेस बालिका वर्ष धीरे-धीरे बीत रहा है। इस दौरान सरकारी तौर पर अनेक सम्मेलन, संगोष्ठियां कार्यक्रम हुए तथा हो रहे हैं। कई सरकारी कार्यक्रम शुरू हुए तथा कई शुरू होने को हैं लेकिन क्या समाज में बालिकाओं तथा महिलाओं को सिर्फ इस तरह के सरकारी आयोजनों से हम उनका वाजिब दर्जा उन्हें दिला पायेंगे। घर के आंगन में बालिका के साथ जो भेदभाव होता है, कई लड़कियों का घर की चार दीवारी के अन्दर जो शारीरिक शोषण होता है, घर से बाहर की दुनिया में जिस तरह से उसे एक इंसान होते हुए भी सिर्फ महिला होने के नाते प्रताड़ित होना पड़ता है, उसे दूर करने के लिए हमें अपने मानसिक सोच में बदलाव लाना होगा। तभी बालिकाओं को लड़कों के बराबर मानकर उनका पालन-पोषण होगा, उन्हें पढ़ने के लिए भेजा जाएगा, वे आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी होंगी और न केवल उनमें आत्मविश्वास आयेगा बल्कि समाज की नजरों में भी उन्हें सम्मान मिल सकेगा।

दक्षेस बालिका वर्ष के अवसर पर जारी एक सरकारी दस्तावेज के अनुसार देश में महिला मौतों की बड़ी संख्या के लिए क्षेत्र, धर्म तथा जाति भी कारण होते हैं। यदि किसी वर्ग विशेष में महिलाओं की स्थिति काफी शोचनीय है तो वहां उनकी मृत्यु दर भी ज्यादा पाई गयी है।

आज भी अन्य शोषित व कमजोर तबकों की तरह महिलायें भेदभाव की शिकार हैं। हम एक ऐसी व्यवस्था में जी रहे हैं जहां आधुनिक प्रगति का अर्थ हमारे लिए लिंग परीक्षण जैसी विधियां हैं जहां बच्ची के जन्म से पहले ही उससे छुटकारा पाया जा सकता है न कि ऐसा आधुनिक समाज है जहां महिलाओं को सही मायने में बराबरी का दर्जा हासिल हो इसलिए महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए सरकारी सहारे के साथ-साथ हमें अपना सामाजिक, आर्थिक दृष्टिकोण बदलना होगा।

आजादी के चालीस वर्षों बाद यदि हम अपने को सही मायने में आजाद कहलाना चाहते हैं तो हमें पुरुष के साथ स्त्री को भी समाज में इंसानों की तरह से रहने का हक देना होगा। समाज का माहौल ऐसा बनाना होगा जिसमें स्त्री-पुरुष, लड़के-लड़की में कोई फर्क न हो। इस संबंध में जो कानून बने हैं उनको कारगर ढंग से लागू करना होगा।

डब्ल्यू. जेड. 1095 साध नगर
पालम कालोनी, नई दिल्ली-110045

भीमराव आम्बेडकर; मूल लेखक: डब्ल्यू. एन. कुबेर; अनुवादक: सीता राम खोड़ावाल; प्रकाशक: प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001; पृष्ठ संख्या: 132; मूल्य: 17 रुपये।

यह वर्ष भारत के संविधान निर्माता और दलितों के मसीहा डा. भीमराव आम्बेडकर का जन्म शताब्दी वर्ष है। डा. आम्बेडकर ने सामाजिक न्याय के लिए बेजुबान मेहनतकशों को स्वर दिया और उनके लिए मरते दम तक संघर्ष करते रहे।

डा. आम्बेडकर के जीवन-वृत्त पर आधारित यह पुस्तक पन्द्रह अध्यायों में बंटी हुई है जिसमें तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था से लेकर भारत के स्वतंत्रता संग्राम में डा. आम्बेडकर की भूमिका को बड़े विस्तार से बताया गया है। पुस्तक का अनुवाद श्री सीताराम खोड़ावाल ने किया है। इसकी भाषा सुगम, सहज और प्रभावोत्पादक है। यह पुस्तक पठनीय है और इससे उन घटनाओं और परिस्थितियों की एक हल्की-सी झांकी पाठक को प्राप्त होगी, जिनका डा. भीमराव आम्बेडकर से गहरा संबंध रहा है।

समीक्षा : दिव्या

ग्रामीण विकास में भूमि और वन संसाधनों का योगदान

डा. जगबीर कौशिक

भारत एक कृषि प्रधान देश है। इसकी लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। कृषि व्यवसाय यहां के निवासियों की जीविका का प्रमुख साधन है। सरकार भी इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए कृषि विकास तथा भू-संसाधनों का इसके प्राकृतिक गुणों के अनुसार प्रयोगों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने के प्रयास कर रही है।

उद्देश्य

काफी समय से यह स्वीकार किया जा रहा है कि आर्थिक नीतियों का लक्ष्य केवल उत्पादन तथा आय की दरों में वृद्धि करना ही नहीं होना चाहिए बल्कि इनसे इस प्रकार का वातावरण भी बनाया जाना चाहिए जिसमें और व्यापक तथा गम्भीर सामाजिक मान्यताओं को भी बढ़ावा मिल सके। स्पष्ट रूप से इसमें दो मुद्दे निहित हैं। पहला यह कि, गरीबों को अपना जीवन स्तर ऊंचा उठाने तथा मानवीय गरिमा को प्राप्त करने के लिए उन्हें यह प्रतीत हो कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया उनके अनुकूल है तथा उसमें उनका शामिल होना आवश्यक है। यह समझना जरूरी है कि गरीब लोगों की आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उनकी जन-शक्ति का समुचित उपयोग करने के लिए अवसर पैदा किए जाएं। यह भी समझना आवश्यक है कि मानस-शक्ति उत्पादन का एक महत्वपूर्ण उपादान है। दूसरा यह कि प्राकृतिक संसाधनों का प्रबन्ध करने के लिए कुछ आधारभूत सिद्धांत निर्धारित किए जाने चाहिए ताकि इनका इष्टतम उपयोग किया जा सके तथा संसाधनों की क्षमता को बनाए रखा ही न जाए अपितु उसे बढ़ाया जा सके।

यद्यपि गरीबों की सामाजिक स्थिति को सुधारने तथा उनकी आर्थिक दशा को उन्नत बनाने की ओर काफी रुचि दिखाई गई है लेकिन आर्थिक तथ्यों के अलावा अन्य बातों तथा अस्थायी उपायों को बहुत ज्यादा प्रश्रय दिया गया है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंध के लिए समन्वित कार्यक्रम बनाए जाएं ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले निर्धनों की आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने के काम में तेजी लायी जा सके।

कुछ पिछली तथा वर्तमान नीतियां

गरीबों को विकास की प्रक्रिया में शामिल करने के लिए अनेक नीतियां अपनाई गई हैं। इनमें भूमि सुधार, पुनर्वितरण, ग्रामीण सामुदायिक विकास कार्यक्रम, सूखा बहुल क्षेत्र कार्यक्रम, लघु तथा सीमांत किसान व खेतीहर मजदूर विकास अभिकरण, खेतीहर मजदूरों के लिए न्यूनतम मजदूरी, बंधुआ मजदूरी मुक्ति, ग्रामीण ऋण परिसमापन आदि शामिल हैं। भूदान आन्दोलन जैसे कुछ स्वैच्छिक कार्यक्रम भी सरकार के सहयोग से चलाए गए। पिछले 3 दशकों में ग्रामीण भारत की स्थिति में काफी सुधार आया है लेकिन यह परिवर्तन प्रयास की मात्रा तथा समस्याओं के आकार के अनुरूप नहीं रहे हैं।

लगभग इन सभी उपायों में वैयक्तिक किसानों/कृषक परिवारों की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। सबसे ज्यादा बल भूमि पुनर्वितरण पर दिया गया लेकिन 1950-89 की अवधि के बीच केवल 8.60 लाख हैक्टेयर जमीन ही पुनर्वितरित की गई जबकि लक्ष्य 2.40 करोड़ हेक्टेयर का था। कुछ तो भूमि पुनर्वितरण नीति तथा कुछ संख्या में वृद्धि के कारण कृषि-भूमि पर दबाव के बढ़ जाने तथा रोजगार के अन्य साधनों का अभाव होने के कारण एक हेक्टेयर से कम जमीन वाले किसान परिवारों की संख्या 1961 से 1991 के बीच 3.50 करोड़ से बढ़कर 7.70 करोड़ हो जाने की आशा है। इस प्रकार 0.2 एकड़ से कम जमीन वाले परिवारों की संख्या 1.90 करोड़ से बढ़कर 3.90 करोड़ हो गई तथा इस प्रकार के परिवारों के पास कुल मिलाकर उपलब्ध भूमि 7 लाख हेक्टेयर से बढ़ कर 8.30 लाख हेक्टेयर हो गई। इस प्रकार भूमि पुनर्वितरण जैसे कार्यक्रमों के बारे में यह कहा जा सकता है कि सामाजिक तथा

आर्थिक उन्नति के इस प्रकार के कार्यक्रमों का उद्देश्य जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े हो जाने के कारण जोतों को लाभप्रद आकार में रखने तथा विकास कार्यक्रमों के लाभों को पुनर्वितरित करना है। उदाहरण के लिए, 1989 में 30 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों के पास 80 प्रतिशत भूमि थी तथा बाकी 20 प्रतिशत के पास 10.76 प्रतिशत भूमि थी। यह भी अनुमान लगाया गया है कि 1988-89 में कुल जोतों में से एक प्रतिशत से भी कम जोतें भारत के कुल खाद्यान्न उत्पादन में 25 प्रतिशत योगदान करती थीं तथा लगभग 90 प्रतिशत लोगों के पास कुल जोतों का 50 प्रतिशत भाग था। क्या यह आशा की जा सकती है कि बाकी 50 प्रतिशत किसानों पर विकास एजेंसियां समुचित ध्यान देंगी?

यह बात आवश्यक है कि छोटे तथा सीमांत किसानों की सहायता के लिए कुछ विशेष एजेंसियां हैं। 1970 में इनकी स्थापना के बाद से जून, 1989 तक लघु सिंचाई, डेयरी तथा मुर्गी पालन विकास कार्यक्रमों से 157 लाख किसान इनसे लाभान्वित हो चुके थे। दूसरी ओर, इस प्रकार के किसानों की संख्या 5 करोड़ है। इस प्रकार इन कार्यक्रमों से केवल 11 प्रतिशत लोगों को ही लाभ मिल सका। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि इस बारे में कोई ठीक-ठीक आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं कि इन योजनाओं से कितना लाभ पहुंचा। यदि सहकारी तथा वाणिज्यिक बैंकों के माध्यम से अल्पावधिक, मध्यावधिक तथा दीर्घावधिक ऋणों को कोई आधार या प्रतीक मान लिया जाए तो 1970-71 तथा 1988-89 के बीच कुल 833 करोड़ रुपये की यह राशि इस प्रकार के ऋणों के रूप में वितरित की गई थी। इस प्रकार 8 वर्षों की अवधि में यह प्रति व्यक्ति 580 रुपये या प्रति परिवार पर 75 रुपये प्रतिवर्ष की राशि होती है। क्या इतनी-सी राशि से किसी परिवार या समाज में स्तर, उसके कार्यकलापों या उसकी स्थिति में कोई सुधार आ सकता है?

इस प्रकार यह तर्क दिया जा सकता है कि यथावश्यक अनिवार्यतः ढांचा परिवर्तन किया जाना चाहिए लेकिन ये समाज के कमजोर वर्गों की आर्थिक हालत को बेहतर बनाने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकते हैं। इसका कारण यह है कि जनसंख्या के अनुपात में प्राकृतिक संसाधनों की कमी है। उदाहरण के लिए इन वर्गों के लिए तथा उपयुक्त फसल प्रणाली बनाने के लिए पर्याप्त भूमि उपलब्ध नहीं है। बड़े जमींदारों से जमीनें खरीदने तथा उसे भूमिहीनों में बांटने के भी प्रयास किए गए हैं। लेकिन इन प्रयासों का परिणाम नितांत नाममात्र का या किसी-किसी मामले में तो प्रतिकूल भी रहा है। 13 परिवारों को लाभान्वित करने के उद्देश्यों से 1978 में इस प्रकार के एक प्रयास के अन्तर्गत 5,000 रुपये प्रति व्यक्ति के हिसाब से जमीन खरीदी गई। उसमें से ज्यादातर जमीन रेतीली थी तथा उसमें बहुत-सी फसलें नहीं उगाई जा सकती थी और जिन लोगों को जमीनें दी गई उनके पास खेती-बाड़ी के पर्याप्त साधन नहीं थे और न उनके पास उसके लिए पर्याप्त धन ही था। इस प्रकार के मामलों से यह सोचना पड़ता है कि कुछ नीतियों का उद्देश्य लोगों को लाभान्वित करना नहीं बल्कि तनाव की स्थिति को बचाना रहा है। यदि ऐसी बात नहीं है तो औद्योगिक मजदूरों को और भी ज्यादा सुविधाएं देने तथा भूमिहीन लोगों को अंगूठे भर जमीने देने का क्या कारण है? अब समय आ गया है कि इस प्रकार की विरोधपूर्ण बातों पर विचार किया जाए तथा गरीब लोगों को यह महसूस कराया जाए कि सिर्फ जमीन मिल जाने से उनके जीवनस्तर में सुधार नहीं आएगा। यह भी एक सर्वमान्य तथ्य है कि भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। इस तथ्य से भी यह आवश्यक है कि इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कोई और रास्ता खोजा जाए।

भूमि तथा वन संसाधन प्रबंध कार्यक्रम

यह स्वीकार किया जा सकता है कि परस्पर सम्बद्ध प्राकृतिक संसाधनों का प्रभावशाली तथा कुशल प्रबंध किये जाने से वस्तुओं तथा सेवाओं की उपलब्धता में वृद्धि होगी तथा गांवों के निर्धन वर्ग के लोगों को लाभप्रद रोजगार के अवसर मिलेंगे। भूमि उपयोग की ऐसी प्रणालियों का विकास किया जाना चाहिये जिनसे उपलब्ध संसाधनों पर दबाव न पड़े तथा कम उत्पादक व अनुत्पादक क्षेत्रों में जीवन का संचार हो।

वन-भूमि भारत का एक प्रमुख प्राकृतिक संसाधन है। लेकिन इसके कुशल प्रबंध के बारे में कोई बहुविषयी खोजबीन या अनुसंधान कार्य नहीं किया गया है। यह संसाधन अपने विकास तथा आत्मवृद्धि के लिए मुख्य रूप से प्रकृति पर ही निर्भर रहा है तथा इस संसाधन की क्षमताओं का भी पूरा-पूरा उपयोग नहीं किया गया है। देश में 7.50 करोड़ हेक्टेयर वन-भूमि होने के बावजूद जिसमें 23 प्रतिशत प्राकृतिक अवस्था में तथा 50 प्रतिशत कृषि अवस्था में है, सकल राष्ट्रीय उत्पाद में 1970-71 से वर्तमान मूल्यों के आधार पर इसका केवल 1.1 प्रतिशत का योगदान रहा है। इसका मुख्य कारण इस क्षेत्र में निवेश का अभाव रहा है। 1950-51 तथा 1988-89 के बीच संसाधनों के समग्र विकास में वन-क्षेत्र का अंश केवल 0.54 प्रतिशत रहा है। यह प्रति हेक्टेयर 2.00 रुपये से भी कम आता है। पिछली अवधि में इस स्थिति में कोई खास सुधार नहीं हुआ।

यह स्थिति तब है जबकि योजना तथा नीति निर्माताओं द्वारा वनों के महत्व को स्वीकार किया जा चुका है। वन तथा लोग,

वन तथा खाद्य आदि विषयों पर काफी चर्चाएं होती रही हैं लेकिन व्यवहार में जितने प्रयास किए जाने चाहिए थे उतने नहीं किए गए। इसका एक कारण खाद्य की आपूर्ति को बढ़ाने को बहुत संकीर्ण अर्थ में लिया जाना हो सकता है। एक अन्य महत्वपूर्ण कारण किसानों को वैयक्तिक रूप में लिया जाना है। इस प्रकार कि प्रवृत्तियों से क्षेत्रीय विशेषताओं की ओर ध्यान नहीं दिया जा सका जिससे प्राकृतिक तथा मानवीय संसाधनों के कुशल प्रबंध को बढ़ावा मिल सकता है। इस साधारण-सी बात की ओर वार्षिक फसलों की तरह वृक्षों का भी उत्पादन मनुष्य के प्रयासों पर ही निर्भर करता है। इस ओर और अधिक व्यावहारिक प्रयास करने की आवश्यकता है।

वन सम्बंधी कार्य श्रम प्रधान है। अनुमान यह है कि वन में काम पर लगाए गए व्यक्ति के पीछे चार और आदमियों को काम मिलता है। इस प्रकार वनों में रोजगार की काफी संभावनाएं हैं तथा लकड़ी को संसाधित करने की व्यवस्था करके तथा अन्य वनाधारित उद्योगों की स्थापना करके इस संभावना को और भी बढ़ाया जा सकता है तथा अधिक व्यक्तियों को रोजगार दिया जा सकता है।

वन के अंतर्गत विद्यमान लगभग 7.50 करोड़ हेक्टेयर भूमि में से इस समय 60 प्रतिशत भूमि का उपयोग हो पाता है। यह अनुमान लगाया गया है कि वनों के अंतर्गत भूमि का उपयोग 18-20 प्रतिशत बढ़ाया जा सकता है। इस संसाधन में अतिरिक्त उत्पादन तैयार होने तथा गरीबों के लिए लाभप्रद रोजगार के अवसर पैदा करने की काफी संभावनाएं विद्यमान हैं जिससे भारत के ग्रामीण क्षेत्रों की स्थिति में भारी परिवर्तन आ सकता है। यद्यपि इसके लिए काफी वित्त की आवश्यकता होगी लेकिन इससे अन्य विकास कार्यों की तुलना में रोजगार के काफी अवसर भी पैदा होंगे। यह भी उल्लेखनीय है कि इस समय वनों के कार्य में जितने भी लोग लगे हैं उनमें से 95 प्रतिशत संख्या अकुशल मजदूरों की है। अतः यह स्पष्ट है कि इससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होगा तथा सामाजिक न्याय में भी वृद्धि हो सकेगी।

इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि उपयोग में लाए जा सकने वाले वन क्षेत्रों के कुशल प्रबंध के बिना किसी अतिरिक्त व्यय या निवेश के बिना भी ग्रामीण क्षेत्रों में परिवर्तन लाया जा सकता है। भारत के वनों में बहुत से वन उत्पाद पाये जाते हैं जिन्हें हम गौण वनोत्पाद के रूप में जानते हैं। इन वृक्षों को कोई क्षति पहुंचाए बिना आसानी से एकत्र किया जा सकता है तथा इस कार्य में वनों के आसपास के क्षेत्रों के बेरोजगार लोगों को आसानी से लगाया जा सकता है। अनुमान है कि इसी प्रकार के उत्पादों को एकत्र करने में रोजगार की संख्या 11 लाख व्यक्ति प्रति वर्ष से बढ़कर 32 लाख व्यक्ति प्रति वर्ष किया जा सकता है। इन उत्पादों को एकत्र करने सम्बंधी सुविधाओं को बढ़ाया जा सकता है तथा इन्हें अवश्य बढ़ाया जाना चाहिए। इन उत्पादों को परिष्कृत करने में भी काफी संख्या में लोगों को रोजगार मिलेगा।

एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि इन वनोत्पादों को एकत्र करने का काम उसी दौरान किया जाना होगा जब खेती का काम चल रहा होता है अर्थात् मार्च से अप्रैल के महीनों के दौरान। इससे खेती के काम के लिए आवश्यक श्रमिकों की उपलब्धता पर असर पड़ सकता है। लेकिन यह एक अच्छी बात होगी क्योंकि यदि किसी नीति का उद्देश्य गरीबों की खुशहाली तथा उनकी सामाजिक स्थिति है तो राष्ट्र को ऐसी स्थिति के लिए भी तैयार रहना चाहिए जिसमें श्रमिकों की मांग बढ़े तथा उनके लिए प्रतिस्पर्धा का वातावरण बने। इससे (i) ग्रामीण क्षेत्रों के श्रमिकों की कृषि भूमि पर निर्भरता कम होगी। (ii) ग्रामीण श्रम बाजार में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का जन्म होगा। (iii) कृषि के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी की उन्नति को बढ़ावा मिलेगा जिससे भूमि तथा श्रम की उत्पादकता में वृद्धि होगी।

वर्तमान वनों का बेहतर प्रबंध करने के अलावा हमारा लक्ष्य देश की कुल भूमि के 1/3 हिस्से में वन लगाना भी है। पिछले तीन दशकों में इस दिशा में काफी प्रयास किए गए हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि बेकार पड़ी भूमि, सड़कों तथा नहरों के किनारों, सार्वजनिक भूमि तथा सीमांत कृषि भूमि को वृक्षारोपण के अन्तर्गत लाया जाये। इस प्रकार की भूमि की कुल मात्रा लगभग 450 लाख एकड़ है। इस भूमि पर वृक्ष लगाने के कार्य में न केवल ग्रामीण क्षेत्रों के बेरोजगार श्रमिकों को ही काफी संख्या में रोजगार मिल रहा है।

इस बात को लगभग सभी स्वीकार करते हैं कि अधिकांश परिस्थितियों में झूम की खेती आर्थिक तथा सामाजिक रूप से अनुकूल नहीं है। दूर-दराज के क्षेत्रों में इस प्रकार की भूमि का बेहतर उपयोग वनाधारित उद्योगों के समन्वित विकास के माध्यम से किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में बांस काफी मात्रा में पाया जाता है। यह कागज के लिए एक काफी महत्वपूर्ण सामग्री है। दुर्गम स्थानों से बांस को बाहर ले जाना काफी खर्चे का कार्य होता है। त्रिपुरा राज्य में यदि बांस पर आधारित 250 टन प्रतिदिन की क्षमता वाला कारखाना लगाया जाये तो यह 32.09 हेक्टेयर बांस क्षेत्र का उपयोग कर सकता है। अतः इतनी भूमि में झूम की खेती बंद की जा सकती है। झूम की खेती करने वाले संभवतः इसे ज्यादा ठीक पाएंगे

क्योंकि इससे उनको और अधिक आर्थिक लाभ तथा रोजगार मिलेगा तथा उनका मूल वातावरण भी सुरक्षित रह सकेगा।

इसके अलावा कृषि भूमि का काफी बड़ा हिस्सा ऐसा भी है जिसमें फसलों का उगाया जाना उतना अधिक लाभप्रद नहीं है। उदाहरण के लिए राजस्थान के कुछ भागों में खेतीबाड़ी में 5 रुपये प्रति दिन खर्च करने पर एक हेक्टेयर भूमि से एक वर्ष में 40 तथा 30 रुपये के बीच निवल लाभ होता है, वह भी यदि फसल अच्छी हो तब। जबकि इस क्षेत्र के लिए उपयुक्त वृक्षों की खेती करने पर वर्ष में औसतन 1,500 रुपये का लाभ होने का अनुमान लगाया गया है। इस कार्य में काफी संख्या में श्रमिकों की भी आवश्यकता होती है तथा कुल खर्च में 74 से 95 प्रतिशत व्यय केवल मजदूरी पर ही होता है। इस प्रकार के और भी अध्ययन किए जाने की आवश्यकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि भूमि की प्रकृति के अनुसार उसका उपयोग किया जाना चाहिए जोकि कृषि विकास तथा ग्रामीण क्षेत्र के निर्धन वर्गों की आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने का सर्वोत्तम उपाय है।

यह भी उल्लेखनीय है कि यहां पर सुझाए गए उपाय तकनीकी, आर्थिक, वित्तीय तथा प्रबंध की दृष्टि से व्यावहारिक हैं। इसके अलावा इन कार्यों से न केवल ग्रामीण निर्धनों को ही फायदा पहुंचेगा अपितु लगातार अधिकाधिक आयात के बावजूद देश के सामने कागज की कमी का संकट भी दूर हो जाएगा जो पिछले वर्षों के दौरान अन्य वस्तुओं की तुलना में इसकी कीमतों में काफी तेजी से वृद्धि हुई है। इसके अलावा ईंधन की लकड़ी के भी दाम बढ़ते जा रहे हैं। इसकी उपलब्धता कम होती जा रही है। इसके अलावा भारत में बाढ़ों के कारण भी काफी जन-धन की हानि होती रहती है। इन स्रोतों के कुशल प्रबंध से इन सभी समस्याओं को हल किया जा सकता है।

मकान नं. 540, पाना उद्यान
नरेला, दिल्ली-110040

शिक्षा दान करो...

जानकी प्रसाद विवश

करना है तो शिक्षा दान करो
हर अनपढ़ में स्वाभिमान भरो।
जो पढ़ने-लिखने में हैं लाचार
खूब पढ़ाकर करना है उपचार
दीप जलाकर अक्षर-अक्षर के
घर-घर उजियारे का करें प्रचार
शिक्षा के पथ पर प्रस्थान करो।
सबके हाथों में पुस्तक कलमें
मुस्कानें अलसाएं काजल में
गांव-गांव शिक्षा के ही मेले
धरती से लगते हों बादल में
पढ़े-लिखे जन शुभ अभियान करो।

207, चन्द्रप्रस्थ कालोनी
माल रोड, मुरार
ग्वालियर (म. प्र.)
पिन कोड-474006

भूमि सुधार के बिना कृषि विकास असंभव

जगदीश प्रसाद

भारत एक कृषि प्रधान देश है। देश की जनसंख्या के 70 प्रतिशत भाग की आजीविका कृषि पर निर्भर है। देश का आर्थिक विकास कृषि के विकास पर निर्भर करता है। कृषि विकास के लिए दो तरह के उपाय किए जाते हैं—(क) संस्थागत सुधार (ख) तकनीकी सुधार।

संस्थागत सुधार के अंतर्गत भूमि-व्यवस्था, भूमि-स्वामित्व, कृषि-ऋण आदि उपाय सम्मिलित किए जाते हैं। इन उपायों को भूमि सुधार के नाम से जाना जाता है। तकनीकी सुधार के अंतर्गत उन्नत बीजों का प्रयोग, अच्छी खाद, उपज का सही मूल्य, उच्चकोटि के उपकरण और समुचित सिंचाई सुविधाएं आती हैं।

मेरे विचार में तकनीकी सुधारों की अपेक्षा भूमि सुधारों का अधिक महत्व है क्योंकि भूमि सुधार किसानों की प्राथमिक आवश्यकता तथा तकनीकी सुधार गौण आवश्यकता है। भूमि की पर्याप्त मात्रा तथा वित्तीय साधन उपलब्ध होने पर ही कृषक तकनीकी सुधारों के बारे में विचार कर सकता है।

भूमि सुधारों के व्यापक अर्थ में मध्यस्थों की समाप्ति, काश्तकारी कानून में संशोधन, उचित लगान का निर्धारण, अधिकतम कृषि-भूमि की सीमा का निर्धारण, चकबंदी, सहकारी खेती आदि उपाय भी सम्मिलित किए जाते हैं। इस तरह भूमि सुधारों का मूल उद्देश्य कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के साथ-साथ सामाजिक न्याय प्रदान करना भी होता है। जमींदारों और किसानों के मध्य समानता लाने के लिए भूमि सुधारों का सहारा लिया जाता है।

भूमि सुधारों के अंतर्गत भूमिहीन किसानों को भूमि प्रदान करके सामाजिक न्याय दिया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, ताईवान तथा मेक्सिको जैसे विश्व के अनेक देशों ने भूमि सुधारों के माध्यम से ही आर्थिक विकास में सफलता पायी है। हमारे देश में भी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सरकार का कृषि विकास की ओर विशेष ध्यान गया है। इस सम्बंध में अनेक उपाय अपनाए गए हैं।

देश में प्रचलित भूमि अधिकार के स्वरूप—जमींदारी प्रथा, महलवारी प्रथा और रैयतवारी प्रथा को सबसे पहले समाप्त किया गया क्योंकि इन प्रथाओं के अंतर्गत जमींदार काश्तकारों का शोषण किया करते थे। किसान रात-दिन मेहनत करने पर भी दो जून रोटी के लिए जमींदारों की दया पर निर्भर रहते थे। सरकार ने इन प्रथाओं के उन्मूलन के लिए कानून बनाये और जमींदारों को उनकी भूमि के मुआवजे के रूप में रकम का भुगतान किया और किसानों को जमींदारों के चंगुल से छुड़ाया। इस सम्बंध में सरकार लगभग 670 करोड़ रुपये भुगतान कर चुकी है। इसके साथ ही लगान नियंत्रण कानून बनाकर सरकार ने काश्तकारों को भू-स्वामियों द्वारा किए जाने वाले शोषण से बचाया। कानून बनने से पहले जहां काश्तकारों द्वारा भू-स्वामियों को 50 से 70 प्रतिशत तक लगान देना पड़ता था वहां अब केवल 20 से 25 प्रतिशत तक ही लगान देना पड़ता है।

एक समस्या जिससे काश्तकार काफी चिंतित रहते थे वह थी अस्थायी पट्टे की। भू-स्वामी अपनी इच्छा से काशतकारों को कृषि भूमि से बेदखल कर दिया करते थे। इस कारण से काश्तकार भूमि पर पूंजी लगाने में हिचकिचाते थे और उनमें असुरक्षा की भावाना सदा बनी रहती थी। इस समस्या को सरकार ने समझा और इस सम्बंध में काश्तकारों के पट्टे की सुरक्षा के लिए कानून बनाये हैं। अब काश्तकारों को केवल तभी कृषि-भूमि से बेदखल किया जा सकेगा जबकि भू-स्वामी स्वयं कृषि कार्य के लिए भूमि का प्रयोग करें, लेकिन ऐसी दशा में भी काश्तकार के पास भूमि की एक न्यूनतम मात्रा छोड़नी पड़ेगी।

काश्तकारों को भूमि का स्वामित्व प्रदान करने के लिए सरकार को योजना आयोग द्वारा सुझाया गया तर्क यह था कि भूमि का स्वामित्व प्रदान कर देने पर काश्तकारों को कृषि-भूमि का सर्वोत्तम उपयोग करके कृषि उत्पादन बढ़ाने और पूंजी निवेश करके भूमि का उपजाऊपन बरकरार रखने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। इस सम्बंध में नियम बनाया गया कि यदि काश्तकार भू-स्वामियों को भूमि का उचित मुआवजा किश्तों में भुगतान कर दे तो उसे भू-स्वामित्व का अधिकार मिल जायेगा। सरकार भू-स्वामियों को स्वयं मुआवजा देकर कृषि भूमि काश्तकारों को हस्तांतरित कर सकती है। इस कानून के अंतर्गत लगभग 40 लाख काश्तकारों को 37 लाख हेक्टेयर भूमि पर स्वामित्व का अधिकार प्रदान किया जा चुका है।

हमारे देश में कृषि-भूमि का वितरण भी संतुलित नहीं है। एक अध्ययन के अनुसार भारत की समस्त कृषि भूमि के 34.4 प्रतिशत भूमि पर केवल 4.5 प्रतिशत लोग ही खेती करते हैं जबकि 15.5 प्रतिशत भूमि पर 67 प्रतिशत लोग खेती करते हैं और 19 प्रतिशत किसान भूमिहीन हैं। सरकार ने वर्तमान और भावी कृषि-भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित करने के लिए कानून बनाए हैं। देश के लगभग सभी राज्यों में इन कानूनों को लागू किया जा रहा है।

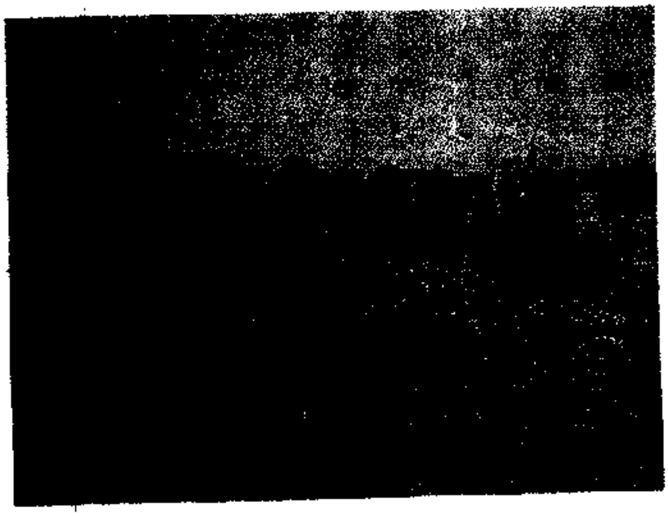

भूमि सुधार के उपायों के अंतर्गत भारत में सहकारी खेती की ओर भी ध्यान दिया जा रहा है। छोटे खेतों की समस्या को दूर करने के लिए सहकारी खेती काफी सफल रही है। इसके अंतर्गत कई किसान मिलकर सहकारिता के आधार पर खेती करते हैं और छोटे-छोटे खेत मिलकर एक बड़े खेत का आकार ले लेते हैं जिससे आधुनिक औजारों का उपयोग करके कृषि-उत्पादन में काफी वृद्धि की जा सकती है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंत में केवल 1000 सहकारी कृषि समितियां थीं लेकिन इसकी महत्ता को देखते हुए इनकी संख्या बढ़कर 15000 से भी अधिक हो गई है।

सहकारी खेती जिस तरह छोटे-छोटे खेतों से अधिकतम लाभ उठाने का सटीक उपाय है उसी तरह बिखरे हुए खेतों को एक ही स्थान पर एकत्रित करने का एक मात्र उपाय है, चकबंदी। इसके माध्यम से एक किसान के कई स्थान पर बिखरे हुए खेतों को एक जगह लाकर एक बड़े खेत में बदल दिया जाता है। इससे किसान आधुनिक उपकरणों का प्रयोग करके तथा सिंचाई की समुचित व्यवस्था करके अपने खेतों से अधिकतम उपज, उपजा सकता है। खेत एक ही स्थान पर होने से उपज की देखभाल और कीटनाशक दवाओं का प्रयोग करने में भी काफी सुविधा रहती है। देश के अनेक राज्यों जैसे पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा हिमाचल प्रदेश ने चकबंदी का कार्य शुरू कर दिया है और कई राज्य तो चकबंदी का कार्य पूरा भी कर चुके हैं। इसके अंतर्गत लगभग 500 लाख हेक्टेयर से अधिक भूमि की चकबंदी की जा चुकी है। इससे खेतों के उपखण्डन की समस्या काफी हद तक सुधरी है और कृषि उत्पादन में भी काफी वृद्धि हुई है।

सरकार ने सन् 1984 के बाद विभिन्न राज्यों द्वारा पास किए गए 55 भूमि सुधार कानूनों को अब संविधान की नवीं अनुसूची में शामिल कर लिया है। अब इन कानूनों को यह चुनौती नहीं दी जा सकती कि वे संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों का हनन करते हैं। हाल ही में सरकार ने कृषि और उससे संबद्ध कार्यों के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के सभी बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों से लिए गए ऋणों की 10,000 रुपये तक बकाया राशि माफ करने की घोषणा की है। साथ ही सरकार ने कई कृषि उपजों के न्यूनतम समर्थन मूल्य भी बढ़ाये हैं--जैसे गेहूं का समर्थन मूल्य 183 रुपये के स्थान पर अब 215 रुपये प्रति क्विंटल कर दिया गया है। सरकार ने फसल बीमा योजना में संशोधन व विस्तार के लिए भी कार्य किया है।

सरकार द्वारा किए गए उपायों से यह स्पष्ट होता है कि सरकार भूमि सुधार और कृषि विकास की ओर विशेष ध्यान देती रही है लेकिन केवल सरकार द्वारा किए गए एकतरफा उपाय इस क्षेत्र के विकास के लिए पर्याप्त नहीं होंगे। सरकार द्वारा बनाए गए कानूनों और उनके क्रियान्वयन का पूर्णतः लाभ प्राप्त करने के लिए किसानों को स्वयं भी जागृत होना पड़ेगा। संगठित होकर सरकार के सहयोग से भूमि सुधार के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों और बाधाओं को जड़ से उखाड़ कर फेंकना होगा।

35/6 पंत नगर, जंगपुरा विस्तार
नई दिल्ली-110014

आठवीं योजना में खादी-ग्रामोद्योगों की भूमिका

बी. आर. चौहान
एम. पंडित

भारतीय अर्थव्यवस्था गांवों पर आधारित है। वास्तव में गांवों की प्रगति ही देश की प्रगति है। गरीबी तथा बेरोजगारी का गांवों में बोलबाला है। अतः इन दोनों को निर्मूल करना आवश्यक है। जब गांवों में रोजगार सृजन होगा तब लोगों की आय बढ़ेगी और क्रय शक्ति बढ़ने पर लोगों का जीवन-स्तर ऊंचा होगा और गरीबी स्वमेव विलीन हो जायेगी।

खादी और ग्रामोद्योग आयोग गांवों में काम करने वाला एक प्रमुख संगठन है। शायद दूसरा कोई अभिकरण नहीं है जिसकी जड़ें सुदूर गांवों तक पहुंची हों। इतना ही नहीं इसका लगाव समाज के पददलितों तथा उपेक्षित वर्गों के साथ बहुत गहरा है। केन्द्र सरकार को खादी ग्रामोद्योगी क्षेत्र से बहुत उम्मीदें हैं। आठवीं योजना के दृष्टिकोण पत्र में स्पष्ट है कि सरकार ने अपने योजना व्यय का 50 प्रतिशत भाग ग्रामीण क्षेत्र को आबंटित करने का निश्चय किया है। निःसंदेह यह सरकार के ग्रामीण विकास के प्रतिबन्धता का सूचक है। प्रमुख संगठन होने के नाते आयोग को इस आबंटन का अधिक लाभ मिलेगा।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ट्राइसेम, जवाहर रोजगार योजना, सूखा उन्मुख क्षेत्र विकास कार्यक्रम जैसे अनेक अभिकरण ग्रामीण क्षेत्र में कार्यरत हैं तथा इन सबका लक्ष्य भी बेरोजगारी मिटाना तथा गरीबी दूर करना रहा है, परन्तु इन सबका संबंध खादी ग्रामोद्योगों से रहा है। कहा जाता है कि जहां बेरोजगारी है वहां खादी ग्रामोद्योगों का प्रभुत्व है। आखिर ऐसा क्यों है? उसे जानने के लिए हमें खादी ग्रामोद्योगों के अर्थशास्त्र को समझना होगा। कम पूंजी में ज्यादा रोजगार देना इसका मुख्य गुण है। 2000 रुपये का अम्बर चरखा प्रदान करके एक व्यक्ति को रोजगार दिया जा सकता है, वह भी उसके घर में। इसी प्रकार ग्रामोद्योगों में भी कम निवेश की जरूरत होती है तथा इनमें स्थानीय तौर पर उपलब्ध कच्चे मालों का उपयोग किया जाता है। उत्पादित वस्तुओं का स्थानीय तौर पर उपभोग भी किया जाता है। इन्हीं गुणों के कारण देश में खादी ग्रामोद्योगों के विकास की विपुल संभावना है।

आठवीं योजना का मुख्य लक्ष्य रोजगार पैदा करना, गरीबी दूर करना और ग्रामीण क्षेत्र का विकास करना है। अपने उपरोक्त गुणों के कारण इस लक्ष्य की प्राप्ति में खादी ग्रामोद्योगी क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान रहेगा। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखकर आठवीं योजना के अन्त में खादी ग्रामोद्योगी क्षेत्र का उत्पादन वर्तमान के लगभग 1700 करोड़ रुपये से बढ़कर 5000 करोड़ रुपये हो जायेगा। इस समय इस क्षेत्र में 42 लाख व्यक्ति लगे हुए हैं इसकी संख्या बढ़ाकर 50 लाख व्यक्ति हो जायेगी।

अपने इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु खादी और ग्रामोद्योग आयोग नई रणनीति अपनाने पर विचार कर रहा है। आयोग की सूची में ग्रामोद्योगों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है क्योंकि 1987 में आयोग के अधिनियम में संशोधन होने से इसका क्षेत्र व्यापक हो गया है। गांवों में 15,000 रुपये की पूंजी पर स्थापित होने वाले उद्योग को ग्रामोद्योग की संज्ञा दी गयी है। लगभग 140 ग्रामोद्योग की संज्ञा दी गयी है। लगभग 140 ग्रामोद्योगों का पता लगाया गया है जिन्हें शीघ्र ही आयोग की सूची में सम्मिलित किया जायेगा। इलैक्ट्रानिक जैसे उद्योग भी इस सूची में सम्मिलित किये गये हैं। अब तो खादी ग्रामोद्योगी क्षेत्र के अन्तर्गत टेलीविजन भी बनने लगे हैं।

काम के अधिकार को असली जामा पहनाना आठवीं योजना का मुख्य ध्येय है। पुनः यहां भी खादी ग्रामोद्योगों की भूमिका सामने आती है। गांव के निरक्षर लोगों तथा कुशल एवं अकुशल कारीगरों को रोजगार प्रदान करने में यह सबसे आगे है। देश की आधी जनसंख्या महिलाओं की है और महिलाओं को इज्जतदार काम देने में भी यह क्षेत्र अग्रणी है। खादी और ग्रामोद्योगी गतिविधियों में महिलाओं की सहभागिता राष्ट्रीय औसत की केवल 14 प्रतिशत की तुलना में 46 प्रतिशत है। दियासलाई, अनाज और दाल प्रशोधन, ताड़ उत्पादों का निर्माण, अखाद्य तेल बीजों का संग्रह, फल प्रशोधन एवं परिरक्षण, रेशा, उद्योग और बांस तथा बेंत कार्य में महिलाओं का प्रतिशत सर्वाधिक है। तालिका 1 देखें।

आदिवासी अनुसूचित जाति एवं जनजाति जैसे समाज के सबसे कमजोर तबके के लोगों को रोजगार देने में खादी ग्रामोद्योगी क्षेत्र ने उल्लेखनीय कार्य किया है। इस क्षेत्र के रोजगार प्राप्त लोगों में इनका योगदान लगभग 30 प्रतिशत है। आयोग ने इन वर्गों द्वारा अपने पारम्परिक उद्योग में प्रयुक्त औजारों तथा उपकरणों में सुधार लाने की चेष्ठा की है ताकि उनकी उत्पादकता बढ़ सके और फलस्वरूप उनका जीवन स्तर ऊंचा उठ सके।

तालिका-1

खादी ग्रामोद्योगी गतिविधियों में महिलाओं की सहभागिता

	उद्योग	महिलाओं की सहभागिता का लगभग प्रतिशत
1.	सूती खादी	75
2.	रेशमी खादी	60
3.	ऊनी खादी	40
4.	अनाज और दाल प्रशोधन उद्योग	80
5.	रेशा	55
6.	जंगली पौधों का एकत्रण	50
7.	गोंद और रेजिन एकत्रण	50
8.	कत्था	50
9.	फल प्रशोधन	50
10.	बैंत और बांस कार्य	40
11.	कुटीर दियासलाई	45
12.	कुम्हारी	40
13.	अखाद्य तेल और साबुन	40
14.	ताड़गुड़	35
15.	चूना	20
16.	ग्रामीण चर्म	10
17.	हाथ कागज	10

स्रोत : खादी और ग्रामोद्योग आयोग, वार्षिक प्रतिवेदन, 1988-1989

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के कारीगरों के लाभार्थी खादी और ग्रामोद्योग आयोग ने निम्न महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं:

(1) देश के चुनिन्दे जिलों में जहां अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की संख्या अधिक है वहां विशेष कार्यक्रम चलाना।

(2) राज्यों को खादी और ग्रामोद्योग आयोग के सम्पूर्ण बजट आबंटन में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लिए अलग आबंटन करना।

(3) विशेषतः अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोगों के अनुकूल अलग योजनाओं को बनाये रखना।

(4) पहाड़ी, सीमान्त, आदम, कमजोर वर्गों के क्षेत्र के लिए हाल ही में लागू 75 प्रतिशत अनुदान और 25 प्रतिशत ऋण के उदार वित्तीय सहायता स्वरूप को देश में अन्य भागों में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के कारीगरों के लाभार्थ प्रदान करना बशर्ते कि वे गरीबी की रेखा के नीचे की श्रेणी में आते हों।

(5) बड़ी संस्थाओं को 2.50 करोड़ रुपये की अधिकतम सीमा के ऊपर और अधिक अतिरिक्त सहायता की अनुमति प्रदान करना बशर्ते कि वे अतिरिक्त निधि खासकर अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लिए उपयोग करते हैं।

रणनीति

एक अनुमान के अनुसार आठवीं योजना में खादी का उत्पादन दुगुना तथा ग्रामोद्योगों का उत्पादन चार गुना हो जायेगा (सातवीं योजना के अन्त में होने वाले उत्पादन से)। इसके लिए खादी और ग्रामोद्योग आयोग ने नये कदम उठाये हैं। खादी का उत्पादन मुख्यतः पंजीकृत संस्थाओं द्वारा तथा ग्रामोद्योगों का उत्पादन सहकारी समितियों द्वारा किया जाता है। आयोग से सीधी सहायता प्राप्त बड़ी संस्थाओं का विकेन्द्रीकरण किया जा रहा है। विकेन्द्रीकरण के अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं। कार्य में बढ़ोतरी के साथ-साथ अधिक लोगों को रोजगार भी मिला है किन्तु आयोग का मुख्य जोर नये क्षेत्रों में नयी संस्थाओं का गठन करना है। नयी संस्थाओं के उदय होने के बाद वहां कार्य का विस्तार होगा और साथ ही नये लोगों को रोजगार भी मिलेगा।

वास्तव में खादी ग्रामोद्योगों के विस्तार के लिए ग्राम स्तरीय संगठन आवश्यक हैं। जिन राज्यों में पंचायती राज संस्थाएं कार्य कर रही हैं। वहां इन गतिविधियों का तेजी से प्रसार हो रहा है जैसे केरल और पश्चिम बंगाल में। भूदान, ग्राम दान संगठनों का भी खादी ग्रामोद्योगी कार्य अपने हाथ में लेना चाहिए। ये ग्राम स्तरीय संगठन कार्य विस्तार में काफी योगदान कर सकते हैं।

400 अंक तक के महीन मलमल उत्पादन करने का श्रेय खादी क्षेत्र को है, यह हमें विश्वविख्यात ढाका के मलमल की याद दिलाता है। सचमुच खादी ग्रामोद्योगी क्षेत्र में भारतीय सांस्कृतिक धरोहर छिपी है। आज भी कोई मिल इतने महीन कपड़ों का उत्पादन नहीं कर सकती है। उसी तरह 1.70 लाख रुपये की ऊनी कश्मीरी शाल भी इसी क्षेत्र का उत्पादन है जिसकी मांग पूरे विश्व में है।

ग्रामोद्योगी उत्पादों की भी अलग शान है। कुटीर उद्योग साबुन में चर्बी नहीं होती, अतः यह धार्मिक प्रवृत्ति वाले लोगों की अपनी पसंद है। नारियल गुड़ का रंग और स्वाद अपने आप में अनोखा है। ग्रामोद्योगी चप्पलें जैसे फुटवेअर बेहद टिकाऊ होती हैं क्योंकि यह प्राकृतिक रूप से मरे पशु शव के चमड़े से बनाया जाता है। बांस और बेंत की लुभावनी वस्तुओं की पर्यटकों को आकर्षित करने का मानो ठेका ले लिया व रेशम के झोले मनमोहक बैग कचरे से कांचन का संकेत देती हैं। इस तरह के अनगिनत उत्पाद खादी ग्राम-ग्रामोद्योगी क्षेत्र की धरोहर है।

उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ उत्पादन में नवीनता का होना भी आवश्यक है ताकि उत्पादित माल तुरंत बिक सके। यानी हमें उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करना चाहिए जिसकी बाजार में मांग है। खादी में नयी-नयी फैशनेबुल डिजाइनों की पोशाकें तैयार की जानी चाहिए वह भी आकर्षक एवं मनमोहन रंगों में। आयोग का विपणन निदेशालय इस कार्य में काफी सहायता प्रदान करता है। इसके अन्तर्गत बिक्री केन्द्रों की संख्या भी बढ़ेगी जिससे लोगों को दूर न जाना पड़े।

यह स्वयं सिद्ध है कि खादी ग्रामोद्योगी वस्तुओं का कम प्रचार होता है। प्रचार होने पर लोग इनके बारे में जान सकेंगे और इन्हें अपनायेंगे। आयोग इस ओर भी ध्यान दे रहा है। खादी और ग्रामोद्योगी वस्तुएं अपनी विशुद्धता के लिए विख्यात है। लोग इन वस्तुओं को खरीदेंगे, केवल प्रचार की जरूरत है।

वित्तीय आवश्यकता

खादी-ग्रामोद्योगी क्षेत्र की वित्तीय जरूरतों को, आयोग को प्राप्त बजट से पूरा नहीं किया जा सकता है। बढ़ती आवश्यकता की पूर्ति के लिए इसे बैंक वित्त का सहारा लेना पड़ रहा है। बैंक वित्त प्राप्त करने में आने वाली कठिनाइयों के कारण कार्यान्वयी अभिकरण इसका भरपूर लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। राज्य औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना से धन प्राप्ति में सहूलियत होगी परन्तु खादी ग्रामोद्योगों के विशाल कार्य को मद्दे नजर रखते हुए खादी ग्रामोद्योगी क्षेत्र के लिए अलग से बैंक की स्थापना करना विचारणीय है। जिस प्रकार ग्रामीण बैंक कुछ ग्रामीण अभिकरणों की वित्तीय जरूरतों को पूरा करते हैं, खादी ग्रामोद्योगी बैंक की स्थापना होने पर इस क्षेत्र के विकास में तेजी आयेगी और आठवीं योजना की लक्ष्य प्राप्ति में यह अपेक्षित योगदान कर सकेगा।

नीति समर्थन

गांवों में उद्योगों का जाल फैलाने से वहां की बेरोजगारी मिटेगी और ग्रामवासियों का शहरों में पलायन रुकेगा। निःसंदेह ग्रामीण उद्योगीकरण के लिए खादी ग्रामोद्योगों को निम्न नीति समर्थन की आवश्यकता है:

(1) ग्रामीण उद्योग क्षेत्र को बिक्री कर, सीमा शुल्क जैसे करों से मुक्त।

(2) जब सरकार बाजार से भारी मात्रा में ग्रामोद्योगी उत्पादन खरीदती हो तो ग्रामीण उद्योग क्षेत्र की वस्तुओं को खरीद एवं मूल्य वरीयता दी जानी चाहिए।

(3) कृषि के समान ग्रामीण उद्योगों को बिजली दी जानी चाहिए और वह भी रियायती दरों पर।

(4) बड़े-बड़े नगरों व शहरों में राज्य सरकारों/स्थानीय संगठनों के विपणन समूहों में अधिमान्य दरों पर बिक्री केन्द्र सुलभ करना।

(5) ग्रामीण उद्योगों की सेवाओं के लिए आवश्यक सुविधाएं मजबूत बनाने के लिए राज्य सरकारों को पर्याप्त वित्तीय सहायता देनी चाहिए।

(6) ग्रामीण उद्योग क्षेत्र को आधुनिक लघु स्तरीय क्षेत्र से अलग कर देना चाहिए और नीति निर्धारण के समय राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकार द्वारा इस क्षेत्र को वरीयता क्षेत्र मानकर सुविधाएं देनी चाहिए।

(7) ग्रामीण उद्योग क्षेत्र को वर्तमान में जो उपदान दिया जा रहा है उसे जारी रहने देना चाहिए और इस क्षेत्र में मूल्य में कुछ अवरोध पैदा हो तो उपदान को बढ़ा देना चाहिए।

(8) आसानी से कच्चा माल देने के साथ-साथ ग्रामोद्योगी उत्पादों की गुणवत्ता तथा विपणन भी सुनिश्चित करनी चाहिए। कारीगरों को हर समय उचित मूल्यों पर कच्चा माल मिलना चाहिए तथा वे समय पर अपना माल बेचने की स्थिति में भी हों। यह उनके कार्य में अगली और पिछली कड़ी का काम करेगा।

(9) ग्रामीण उद्योगीकरण में अनेक अभिकरण लगे हुए हैं। विभिन्न संगठनों को कार्य में उचित समन्वय बहुत जरूरी है। ऐसा होने पर ही अधिक अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकेंगे।

उपरोक्त नीति समर्थन मिलने पर कारीगर अपने पारम्परिक काम में चिपके रहेंगे और अपने हुनर को प्रदर्शित करते रहेंगे। इस तरह भारत का विशाल वैभव सुरक्षित रहेगा और ग्रामवासी पूर्ववत गांवों के स्वच्छ वातावरण से पृथक नहीं होंगे। गांवों में खुशहाली बढ़ेगी और भारत गांवों का देश कहलाने का गर्व महसूस करेगा।

निदेशक (प्रचार)
खादी और ग्रामोद्योग आयोग
बम्बई-400056

आदर्श गांव—बुखारा

सलमान ज़मीर

उ. प्र. के जनपद बरेली के विकास खण्ड क्यारा का आदर्श गांव बुखारा बरेली-बदायूं रोड पर स्थित है और लाल फाटक से लगभग दो कि. मी. दूरी पर बसा है। गांव में अधिकतर पिछड़ी जाति व अनुसूचित जाति के लोग निवास करते हैं। बुखारा गांव को आदर्श गांव की संज्ञा दी जाये तो किसी भी प्रकार की अतिश्योक्ति नहीं होगी, क्योंकि गांव में पंचायत घर,प्राइमरी पाठशाला भवन, सामुदायिक विकास केन्द्र, व्यायामशाला, गांव के मध्य 8 इण्डिया मार्क II हैण्डपम्प, 6 पेयजल कूप, 19 निर्बल वर्ग आवास, 16 इन्दिरा आवास, 200 निर्धूम चूल्हा, मत्स्य तालाब, 19 सुलभ शौचालय (अनुसूचित जाति), 52 सुलभ शौचालय (सामान्य जाति), 35 घरों में बायो गैस कनैक्शन और 45 कुटीर ज्योति कनैक्शन हैं। प्रकाश हेतु गांव में सौर ऊर्जा चालित 7 सोलर पी. वी. लाइटें लगी हुई हैं। गांव वालों की जागरूकता के कारण वर्ष 1988-89 में 27 परिवार कल्याण केस किये गये जिसके अन्तर्गत गांव सभा को 25 हजार रुपये का पुरस्कार प्रदान किया गया और इस धनराशि को गांव के अन्दर खड़न्जा बिछाने में लगा दिया गया। पूरे गांव में खड़न्जा बिछा हुआ है और व्यवस्थित रूप से नालियां बनी हुई हैं। वर्ष 1989-90 में बरेली जनपद में पंचायत कर वसूली, अल्प बचत व अन्य राष्ट्रीय कार्यक्रमों में प्रथम आने पर 2700 रुपये का पुरस्कार पंचायत विभाग की ओर से बुखारा ग्राम सभा को प्रदान किया गया। प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र चल रहा है। गांव में युवक मंगल दल का गठन किया जा चुका है और युवक मंगल दल को प्रान्तीय विकास दल विभाग की ओर से दूरदर्शन सेट भी उपलब्ध कराया गया है। महिला मंगल दल गांव की महिलाओं को जन जाग्रति व महिला उत्थान हेतु जानकारी उपलब्ध करा रहा है।

ग्राम प्रधान श्री नत्थू सिंह का बुखारा गांव को आदर्श गांव बनाने में महत्वपूर्ण योगदान है। ग्रामीण विकास एवं गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के अन्तर्गत मिलने वाली धनराशि का ग्राम प्रधान गांव सभा की खुली बैठक बुलाकर प्रस्ताव पारित करके खड़न्जा, मिट्टी का कार्य, वृक्षारोपण व अन्य कार्यों में गांव वासियों की इच्छा के अनुरूप उपयोग करते हैं। गांव सभा द्वारा 44 भूमिहीनों को पट्टे भी दिलाये गये हैं। श्री नत्थू सिंह ग्राम प्रधान के नेतृत्व में इफको द्वारा गांव सभा बुखारा के कृषकों को कृषि की नवीन तकनीकी ज्ञान उपलब्ध कराये जाने हेतु प्रदेश के विभिन्न स्थानों पर ले जाया गया तथा इफको द्वारा गांव को अंगीकृत करने के उपरान्त निःशुल्क बीज, कृषि यन्त्र कृषकों को वितरित किये गये हैं। विकास कार्यक्रमों का लाभ पहुंचाने के लिए बुखारा गांव को यूनियन बैंक आफ इंडिया द्वारा अंगीकृत किया गया है तथा लायन्स क्लब बरेली सेन्ट्रल द्वारा गांव बुखारा को अंगीकृत करके शिविर का आयोजन किया जाता है जिसके तहत शिक्षा के प्रचार-प्रसार, राष्ट्रीय एकता पर बल प्रदान किया जाता है और ग्रामवासियों की सहायता की जाती है। सभी ग्रामवासी व प्रधान मिलकर प्रत्येक आयोजन को सफल बनाते हैं।

बुखारा गांव में वैकल्पिक ऊर्जा काम्पलेक्स है जो कि 3 एकड़ भूमि में बना हुआ है। यहां पर सौर ऊर्जा चालित विभिन्न संयंत्र जैसे सोलर वाटर हीटर, सोलर स्टिल (परिष्कृत जल हेतु), दो पवन चक्की, निर्धूम चूल्हा, सोलर कुकर, एरोजेनरेटर, लोलिफट पम्प, सोलर लाइट, सोलर ग्रेन ड्रेयर, (पत्तों से दोना व थाली बनाने की मशीन, इम्प्रूव्ड वुड स्टोव या प्रयागिनी चूल्हा, सोलर टी. वी. मुख्य हैं। ऊर्जा काम्पलेक्स पर स्थापित पवन चक्की से बुखारा गांव के कृषकों की भूमि की सिंचाई की जाती है। काम्पलेक्स पर सिंचाई के उद्देश्य से बायो गैस इंजन भी स्थापित किया गया है जो कि 20 प्रतिशत डीजल व 80 प्रतिशत बायो गैस से चलेगा। गांव के अन्दर घरों में 35 कनेक्शन हेतु बायो गैस काम्पलेक्स से दी जाती है। ऊर्जा काम्पलेक्स पर 14 सौर ऊर्जा लाइटें लगी हुई हैं जो कि रात को जलने पर दिन का आभास कराती हैं। काम्पलेक्स एक दर्शनीय स्थल बन गया है। प्रायः विदेशी लोग तथा भारत के अन्य प्रान्तों के लोग आदर्श गांव बुखारा व ऊर्जा काम्पलेक्स को देखने आते रहते हैं।

अन्वेषक
जिला ग्राम्य विकास अभिकरण
बरेली (उ. प्र.)

पुस्तक समीक्षा

किसान : मूलकृति—मौठिन; अनुवादक—चन्द्र प्रकाश प्रभाकर; प्रकाशक—इरावदी पब्लिकेशन्स, सी-487, विकासपुरी, नई दिल्ली-18; पृष्ठ संख्या-144; मूल्य 25 रुपये।

"किसान" चन्द्र प्रकाश प्रभाकर द्वारा अनूदित कृति है। इसके रचनाकार बर्मी साहित्यकार, पत्रकार एवं इतिहासकार श्री मौठिन हैं। बर्मा के राष्ट्र कवि 'माऊं ची आऊं' ने इस डबा (किसान) कृति को बर्मा का 'गोदान' बताया है। यही कारण है कि अनुवादक को इसे अनूदित करने की प्रेरणा मिली।

'डबा' बर्मा की आजादी से पूर्व की स्थिति पर लिखा गया उपन्यास है और गोदान भी भारत की आजादी से पहले का उपन्यास है परन्तु दोनों की पृष्ठभूमि समान होने पर भी 'डबा' में राजनैतिक स्थिति के चित्रण पर विशेष बल दिया गया है जबकि गोदान में किसान (होरी) की सामाजिक व आर्थिक दशा के चित्रण का प्राधान्य है। डबा (किसान) में भी सामाजिक-आर्थिक दशा का चित्रण है परन्तु उसी स्तर का जिस स्तर का गोदान में राजनीतिक चित्रण।

डबा (किसान) एक सुखान्त कथा है परन्तु होरी की ट्रैजडी को हिन्दी जगत के लोग शायद ही भुला पाएंगे। इन दोनों उपन्यासों की परस्पर तुलना न की जाए तो अच्छा रहेगा। डबा (किसान) अनूदित रूप में एक अच्छी रचना है। अनुवादक ने बर्मा की एक सशक्त रचना के तथ्य को भारतीयों तक पहुंचाने का जो कार्य किया है वह निश्चय ही सराहनीय है। कुछ स्थलों पर अनुवादक ने निश्चय ही बहुत जीवन्त अभिव्यक्ति की है यथा 'शिशु वात्सल्य रस रूपी अमी तुल्य श्वेत चांदी के सदृश प्रवाहित धाराओं को चूस-चूस कर पी रहा था।' ऐसे स्थलों पर प्रभाकरजी ने भाषा का विशेष ध्यान रखा है अन्यथा यहा वात्सल्य रस के स्थान पर श्रृंगार के दर्शन होने लगते। (पृष्ठ-14)

कुछ स्थल ऐसे भी हैं जहां अर्थ को समझना असम्भव-सा हो गया है यथा 'डबा' के शरीर में उसकी नसें नाड़ियां जापानी की तलवार साथ-साथ झूमकर एक-एक कर एक, दो-तीन कहती हुई अन्दाजा कर रही थीं। यहां स्पष्ट नहीं कहा जा सकता कि मूल लेखन में कुछ अभाव है या अनुवाद में। इस प्रकार की खामियों के बावजूद यह प्रयास सराहनीय है क्योंकि इस उपन्यास के अनुवाद होने पर ही बर्मी लोगों व उनकी संस्कृति के विषय में हम अपने देश में बैठे-बैठे जान पाते हैं।

'किसान' उपन्यास में कुल 12 अध्याय हैं। इन सभी का नामकरण प्रमुख घटना या विचारों को लेकर किया गया है यथा 'पेट में दाढ़ी' में डबा (किसान) होने पर भी वह समझदार है, बताकर लेखक उसके 'पेट में दाढ़ी' है यह संकेत करता है। 'तड़पती हुई मछली' में डबा अपनी ही जाति के फ्योटोक नामक व्यक्ति के जुल्मों को बर्दाश्त करता है और काफी घायल हो जाने के बाद किसी तरह तड़पता-तड़पता शहर के अस्पताल में पहुंच जाता है। इसमें डबा की दशा मछली की तड़प के समान दर्शाई गई है।

'वतन का दुश्मन' में जापानियों के जुल्म से बर्मी डबा आतंकित है। वह उनके शिकंजे में जकड़ा जाता है। वे उसके साथ के एक दो लोगों को मारकर उनके लिए कब्र डबा से खुदवाते हैं। डबा काम तो कर देता है फिर भगवान का नाम लेकर उनके शिकंजे को तोड़ कर जंगल में भाग जाता है और बच जाता है।

'टोकरी वाली गुजरी' में डबा अपनी बेटी मीनी की शादी हे—ची से पक्की कर देता है और उसके दहेज के लिए सामान आदि लाने बाजार चला जाता है। इस अध्याय तक आते-आते वह अपने सपनों को साकार करने में लग जाता है। डबा की विजय अंतिम अध्याय है, इसमें डबा को बाजार में जब यह पता चलता है कि अब जापानी नोट नहीं चलेंगे, अंग्रेजी चलेंगे, तो वह जमा किए हुए जापानी नोटों को आग में भस्म कर देता है। इस पर उसकी पत्नी मीफो उसे पागल भी समझती है परन्तु डबा को इस क्रिया से न जाने कैसा संतोष मिलता है कि वह जोश में नारा लगाता है 'आजाद मौम रे, हम बर्मी, हमारी क्रान्ति सफल हुई।' यह उपन्यास विश्व साहित्य की कसौटी पर भी खरा उतरता है। प्रभाकरजी से आशा है कि भविष्य में भी वे ऐसी कृतियां रचते रहेंगे।

समीक्षा : ऋता विकल्प
ए. जी. I/105 ए, विकासपुरी, नई दिल्ली

गीता

आर.एन. / 708 / 57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी (डी एन) 98
पूर्व भुगतान के बिना एन.डी.पी.एस.ओ., नई दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

RN/708/57
P & T Regd. No. D (DN) 98
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at NDPSO, New Delhi

डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और
तारा आर्ट प्रेस, बी-4, हंस भवन, बहादर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 द्वारा मुद्रित